वस्तुपरिच्छेदकं ज्ञानम्, स्वतोऽभिन्नवस्तुपरिच्छेदकं दर्शनम्, ततो नानयोरेकत्वमिति। ज्ञानदर्शनयोरक्रमेण प्रवृत्तिः किन्न स्यादिति चेत् किमिति न भवति ? भवत्येव, क्षीणावरणे द्वयोरक्रमेण प्रवृत्त्युपलम्भात्। भवतु छद्मस्थावस्थायामप्यक्रमेण क्षीणावरणे इव तयोः प्रवृत्तिरिति चेन्न, आवरणनिरुद्धा[1]क्रमयोरक्रमवृत्तिविरोधात्। अस्वसंविद्रूपो न कदाचिदप्यात्मोपलभ्यत इति चेन्न, बहिरङ्गोपयोगावस्थायामन्तरङ्गोपयोगानुपलम्भात्। श्रुतदर्शनं किमिति नोच्यत इति चेन्न, तस्य मतिपूर्वकस्य दर्शनपूर्वकत्वविरोधात्। यदि बहिरङ्गार्थसामान्यविषयं दर्शनमभविष्यत्तदा श्रुतदर्शनमपि[2] समभविष्यत्।

अवधिदर्शनप्रदेशप्रतिपादनार्थमाह—

ओधि-दंसणी–असंजदसम्माइट्ठि–प्पहुडि जाव खीण–कसाय–वीयराय–छदुमत्था त्ति[3] ॥ १३४ ॥

शंका— ज्ञान और दर्शनकी युगपत् प्रवृत्ति क्यों नहीं होती ?

समाधान— कैसे नहीं होती, होती ही है, क्योंकि, जिनके आवरण कर्म नष्ट हो गये हैं ऐसे तेरहवें आदि गुणस्थानवर्ती जीवोंमें ज्ञान और दर्शन इन दोनोंकी युगपत् प्रवृत्ति पाई जाती है।

शंका— आवरणकर्मसे रहित जीवोंमें जिस प्रकार ज्ञान और दर्शनकी युगपत् प्रवृत्ति पाई जाती है, उसी प्रकार छद्मस्थ अवस्थामें भी उन दोनोंकी एक साथ प्रवृत्ति होओ ?

समाधान— नहीं, यों कि, आवरणकर्मके उदयसे जिनकी युगपत् प्रवृत्ति करनेकी शक्ति रुक गई है ऐसे छद्मस्थ जीवोंके ज्ञान और दर्शनमें युगपत् प्रवृत्ति माननेमें विरोध आता है।

शंका— अपने आपके संवेदनसे रहित आत्माकी तो कभी भी उपलब्धि नहीं होती है?

समाधान— नही, क्योंकि, बहिरंग पदार्थोंकी उपयोगरूप अवस्थामें अन्तरंग पदार्थका उपयोग नहीं पाया जाता है।

शंका— श्रुतदर्शन क्यों नहीं कहा ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, मतिज्ञानपूर्वक होनेवाले श्रुतज्ञानको दर्शनपूर्वक माननेमें विरोध आता है। दूसरे यदि बहिरंग पदार्थको सामान्यरूपसे विषय करनेवाला दर्शन होता तो श्रुतदर्शनभी होता। परंतु ऐसा नहीं है, इसलिये श्रुतज्ञानके पहले दर्शन नहीं होता है।

अब अवधिदर्शनसंबन्धी गुणस्थानोंके प्रतिपादन करनेकेलिये सूत्र कहते हैं—

अवधिदर्शनवाले जीव असंयत सम्यग्दृष्टिसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुण-

१ मु. आवरणानिरुद्धा। २. मु. श्रुतज्ञानदर्शनमपि।

३ अवधिदर्शने असंयतसम्यग्दृष्टयादीनि क्षीणकषायान्तानि। स. सि. १. ८.

सुगममेतत् । विभङ्गदर्शनं किमिति पृथग् नोपदिष्टमिति चेन्न, तस्यावधिदर्शनेऽन्तर्भावात् । मनःपर्ययदर्शनं तर्हि वक्तव्यमिति चेन्न, मतिपूर्वकत्वात्तस्य दर्शनाभावात् ।

केवलदर्शनस्वामिप्रतिपादनार्थमाह---

केवलदंसणी तिसु ट्ठाणेसु सजोगिकेवली अजोगिकेवली सिद्धा चेदि[1] ॥ १३५ ॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अनन्तत्रिकालगोचरबाह्येऽर्थे प्रवृत्तं केवलज्ञानं, स्वात्मनि त्रिकालगोचरे प्रवृत्तं केवलदर्शनम्[2] । कथमनयोः समानतेति चेत्कथ्यते । ज्ञानप्रमाणमात्मा, ज्ञानं च त्रिकालगोचरानन्तद्रव्यपर्यायपरिमाणं ततो ज्ञानदर्शनयोः समानत्वमिति । स्वजीवस्थपर्यायैर्ज्ञानाद्दर्शनमधिकमिति चेन्न, इष्टत्वात् । कथं पुनस्तेन तस्य समानत्वम् ? न, अन्योन्यात्मकयोस्तदविरोधात् । उक्तं च---

स्थान तक होते हैं ॥ १३४ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

शंका--- विभंगदर्शनका पृथक् रूपसे उपदेश क्यों नहीं किया ?

समाधान--- नहीं, क्योंकि, उसका अवधिदर्शनमें अन्तर्भाव हो जाता है ।

शंका--- तो मनःपर्ययदर्शनको भिन्न रूपसे कहना चाहिये ?

समाधान--- नहीं, क्योंकि, मनःपर्ययज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है, इसलिये मनःपर्ययदर्शन नहीं होता है ।

अब केवलदर्शनके स्वामीके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं---

केवलदर्शनके धारक जीव सयोगिकेवली, अयोगिकेवली और सिद्ध इन तीन स्थानोंमें होते हैं ॥ १३५ ॥

शंका--- त्रिकालगोचर अनन्त बाह्य पदार्थोंमें प्रवृत्ति करनेवाला केवलज्ञान है और त्रिकालगोचर स्वात्मामें प्रवृत्ति करनेवाला केवलदर्शन है, इसलिये इन दोनोंमें समानता कैसे हो सकती है ?

समाधान--- आत्मा ज्ञानप्रमाण है और ज्ञान त्रिकालके विषयभूत द्रव्योंकी अनन्त पर्यायोंको जाननेवाला होनेसे तत्परिमाण है, इसलिये ज्ञान और दर्शनमें समानता है ।

शंका--- जीवमें रहनेवाली स्वकीय पर्यायोंकी अपेक्षा ज्ञानसे दर्शन अधिक है ?

समाधान--- नहीं, क्योंकि, यह बात इष्ट ही है ।

शंका--- फिर ज्ञानके साथ दर्शनकी समानता कैसे हो सकती है ?

१ केवलदर्शने सयोगकेवली अयोगकेवली च । स. सि. १. ८.

२ मु. (स्वतोऽभिन्नवस्तुपरिच्छेदकं च दर्शनमिति) ।

आदा णाण-पमाणं णाणं णेय-प्पमाणमुद्दिट्ठं ।
णेयं लोआलोअं तम्हा णाणं तु सव्व-गयं[1] ॥ १९८ ॥
एय-दवियम्मि जे अत्थ-पज्जया वयण-पज्जया वावि ।
तीदाणागय-भूदा तावदियं तं हवइ दव्वं[2] ॥ १९९ ॥ इदि

लेश्याद्वारेणजीवपदार्थसत्त्वान्वेषणायाह——

लेस्साणुवादेण अत्थि किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउलेस्सिया तेउलेस्सिया पम्मलेस्सिया सुक्कलेस्सिया अलेस्सिया चेदि ॥ १३६ ॥

लेश्या इति किमुक्तं भवति ? कर्मस्कन्धैरात्मानं लिम्पतीति लेश्या[3] । कषायानुरञ्जितैव योगप्रवृत्तिर्लेश्येति नात्र परिगृह्यते, सयोगकेवलिनोऽलेश्यत्वापत्तेः । अस्तु चेन्न, 'शुक्ललेश्यः सयोगकेवली' इति वचनव्याघातात् । लेश्या नाम योगः

समाधान—— समानता नहीं हो सकती, यह बात नहीं है, क्योंकि, एक दूसरेकी मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज अपेक्षा करनेवाले उन दोनोंमें समानता मान लेनेमें कोई विरोध नहीं आता है । कहा भी है——

आत्मा ज्ञानप्रमाण है, ज्ञान ज्ञेयप्रमाण है, ज्ञेय लोकालोकप्रमाण है, इसलिये ज्ञान सर्वगत कहा है ॥ १९८ ॥

एक द्रव्यमें अतीत, अनागत और गाथामें आये हुए 'अपि' शब्दसे वर्तमानपर्यायरूप जितनी अर्थपर्याय और व्यंजनपर्याय हैं तत्प्रमाण वह द्रव्य होता है ॥ १९९ ॥

अब लेश्यामार्गणाद्वारा जीवपदार्थके अस्तित्वके अन्वेषण करनेके लिये सूत्र कहते हैं——

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या और अलेश्यावाले जीव हैं ॥ १३६ ॥

शंका—— 'लेश्या' इस शब्दसे क्या कहा जाता है ?

समाधान—— जो कर्मस्कंधसे आत्माको लिप्त करती है उसे लेश्या कहते हैं ।

यहांपर 'कषायसे अनुरंजित योगप्रवृत्तिको लेश्या कहते हैं' यह अर्थ नहीं ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि, इस अर्थके ग्रहण करनेपर सयोगिकेवलीको लेश्यारहितपनेकी आपत्ति प्राप्त होती हैं ।

शंका—— यदि सयोगिकेवलीको लेश्यारहित मान लिया जावे तो क्या हानि है ?

समाधान—— नहीं, क्योंकि, ऐसा मान लेनेपर 'सयोगिकेवलीके शुक्ललेश्या पाई

---

१ प्रवच. १, २३.

२ गो. जी. ५८२. स. त. १. ३३.

३ लिश्यते प्राणी कर्मणा यया सा लेश्या । यदाह, श्लेष इव वर्णबन्धस्य कर्मबन्धस्थितिविधात्र्यः । स्था. १. ठा. शा. । लिश्यते श्लिष्यते कर्मणा सह आत्मा अनयेति लेश्या । कर्म. ४. कर्म. । कृष्णादिद्रव्य-साचिव्यात्परिणामो य आत्मनः । स्फटिकस्येव तत्रायं लेश्याशब्दः प्रवर्तते ॥ १ ॥ प्रज्ञा. १७. पद. । (अभि. रा. को. लेस्सा.)

कषायस्तावुभौ वा ? किं चातः, नाद्यौ विकल्पौ, योगकषायमार्गणयोरेव तस्या अन्तर्भावात् । न तृतीयविकल्पस्तस्यापि तथाविधत्वात् । न प्रथमद्वितीयविकल्पोक्तदोषौ, अनभ्युपगमात् । न तृतीयविकल्पोक्तदोषो द्वयोरेकस्मिन्नन्तर्भावविरोधात् । न द्वित्वमपि, कर्मलेपैककार्यकर्तृत्वेनैकत्वमापन्नयोर्योगकषाययोर्लेश्यात्वाभ्युपगमात् । नैकत्वात्तयोरन्तर्भवति, द्वयात्मकैकस्य जात्यन्तरमापन्नस्य केवलेनैकेन सहैकत्वसमानत्वयोर्विरोधात् । योगकषायकार्याद्व्यतिरिक्तलेश्याकार्यानुपलम्भान्न ताभ्यां पृथग्लेश्यास्तीति चेन्न, योगकषायाभ्यां प्रत्यनीकत्वाद्यालम्बनाचार्यादिबाह्यार्थसन्निधाने-

....

जाती है' इस वचनका व्याघात हो जाता है ।

शंका—— लेश्या योगको कहते हैं, अथवा, कषायको कहते हैं, या योग और कषाय दोनोंको कहते हैं ? इनमेंसे आदिके दो विकल्प अर्थात् योग या कषायरूप लेश्या तो मान नहीं सकते, क्योंकि, वैसा माननेपर योगमार्गणा और कषायमार्गणामें ही उसका अन्तर्भाव हो जायगा । तीसरा विकल्प भी नहीं मान सकते हैं, क्योंकि, तीसरा विकल्प भी आदिके दो विकल्पोंके समान है । अर्थात् तीसरे विकल्पके माननेपर भी लेश्याका उक्त दोनों मार्गणाओंमें अथवा किसी एक मार्गणामें अन्तर्भाव हो जाता है । इसलिये लेश्याकी स्वतन्त्र सत्ता सिद्ध नहीं होती है ?

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

समाधान—— शंकाकारने जो ऊपर तीन विकल्प उठाये हैं उनमेंसे पहले और दूसरे विकल्पमें दिये गये दोष तो प्राप्त ही नहीं होते हैं, क्योंकि, लेश्याको केवल योग और केवल कषायरूप माना ही नहीं है । उसी प्रकार तीसरे विकल्पमें दिया गया दोष भी प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि, योग और कषाय इन दोनोंका किसी एकमें अन्तर्भाव माननेमें विरोध आता है । यदि कहा जाय कि लेश्याको दोरूप मान लिया जाय जिससे उसका योग और कषाय इन दोनों मार्गणाओंमें अन्तर्भाव हो जायगा, सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, कर्मलेपरूप एक कार्यको करनेवाले होनेकी अपेक्षा एकपनेको प्राप्त हुए योग और कषायको लेश्या माना है । यदि कहा जाय कि एकताको प्राप्त हुए योग और कषायरूप लेश्या होनेसे उन दोनोंमें लेश्याका अन्तर्भाव हो जायगा, सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, दो धर्मोंके संयोगसे उत्पन्न हुए द्वयात्मक अतएव किसी एक तीसरी अवस्थाको प्राप्त हुए किसी एक धर्मका केवल एकके साथ एकत्व अथवा समानता मान लेनेमें विरोध आता है ।

शंका—— योग और कषायके कार्यसे भिन्न लेश्याका कार्य नहीं पाया जाता है, इसलिये उन दोनोंसे भिन्न लेश्या नहीं मानी जा सकती है ?

समाधान—— नहीं, क्योंकि, विपरीतताको प्राप्त हुए मिथ्यात्व अविरति आदिके आलम्बनरूप आचार्यादि बाह्य पदार्थोंके संपर्कसे लेश्याभावको प्राप्त हुए योग और कषायोंसे,/ केवल योग और केवल कषायके कार्यसे भिन्न संसारकी वृद्धिरूप कार्यकी उपलब्धि होती

नापन्नलेश्याभावाभ्यां संसारवृद्धिकार्यस्य तत्केवलकार्याद्वचतिरिक्तस्योपलम्भात् । संसारवृद्धिहेतुर्लेश्येति प्रतिज्ञायमाने लिम्पतीति लेश्येत्यनेन विरोधश्चेन्न लेपाविनाभावित्वेन तद्वृद्धेरपि तद्वचपदेशाविरोधात् । ततस्ताभ्यां पृथग्भूता लेश्येति स्थितम् । षड्विधः कषायोदयः । तद्यथा, तीव्रतमः तीव्रतरः तीव्रः मन्दः मन्दतरः मन्दतम इति । एतेभ्यः षड्भ्यः कषायोदयेभ्यः परिपाटचा षड् लेश्या भवन्ति । कृष्णलेश्या नीललेश्या कपोतलेश्या तेजोलेश्या[1] पद्मलेश्या शुक्ललेश्या चेति । उक्तं च---

चंडो ण मुयदि वेरं भंडण-सीलो य धम्म-दय-रहिओ ।
दुट्ठो ण य एदि वसं लक्खणमेदं तु किण्हस्स[2] ॥ २०० ॥
मंदो बुद्धि-विहीणो णिव्विण्णाणी य विसय-लोलो य ।
माणी मायी य तहा आलस्सो चेय भेज्जो य[3] ॥ २०१ ॥

है जो केवल योग और केवल कषायका कार्य नहीं कहा जा सकता है- इसलिये लेश्या उन दोनोंसे भिन्न है यह बात सिद्ध हो जाती है ।

शंका--- संसारकी वृद्धिका हेतु लेश्या है ऐसी प्रतिज्ञा करनेपर 'जो लिप्त करती है उसे लेश्या कहते हैं' इस वचनके साथ विरोध आता है ?

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

समाधान--- नहीं, क्योंकि, कर्मलेपकी अविनाभावी होनेरूपसे संसारकी वृद्धिको भी लेश्या ऐसी संज्ञा देनेसे कोई विरोध नहीं आता हैं । अतः उन दोनोंसे पृथग्भूत लेश्या है यह बात निश्चित हो जाती हैं ।

कषायका उदय छह प्रकारका होता है । वह इसप्रकार है, तीव्रतम, तीव्रतर, तीव्र, मन्द, मन्दतर और मन्दतम । इन छह प्रकारके कषायके उदयसे उत्पन्न हुई परिपाटीक्रमसे लेश्या भी छह हो जाती हैं- कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या कहा भी है---

तीव्र, क्रोध करनेवाला हो, वैरको न छोड़े, लड़ना जिसका स्वभाव हो, धर्म और दयासे रहित हो, दुष्ट हो और जो किसीके वशको प्राप्त न हो, ये सब कृष्णलेश्यावालेके लक्षण हैं ॥ २०० ॥

मन्द अर्थात् स्वच्छन्द हो अथवा काम करनेमें मन्द हो, वर्तमान कार्य करनेमें विवेक रहित हो, कला-चातुर्यसे रहित हो, पांच इन्द्रियोंके स्पर्शादि बाह्य विषयोंमें लम्पट हो, मानी हो, मायावी हो, आलसी हो, और भीरू हो, ये सब भी कृष्णलेश्यावालेके लक्षण हैं ॥ २०१ ॥

१ मु. कापोतलेश्या पीतलेश्या ।

२ प्रा. पं. १, १४४ । गो. जी. ५०९. पंचासवप्पवत्तो तीहि अगुत्ती छसु अविरओ य । तिव्वारम्भपरिणओ खुद्दो साहसिओ नरो ॥ निद्धंधसपरिणामो निस्संसो अजिइंदिओ । एयजोगसमाउत्तो किण्हलेसं तु परिणमे ॥ उत्त. ३४. २१-२२.

३ प्रा. पं. १, १४५ । गो. जी. ५१०.

णिद्दा-वंचण-बहुलो धण-धण्णे होइ तिव्व-सण्णो य ।
लक्खणमेदं भणियं समासदो णील-लेस्सस्स[1] ॥ २०२ ॥
रूसदि णिंददि अण्णे दूसदि बहुसो य सोय-भय-बहुलो ।
असुयदि परिभवदि परं पसंसदि य अप्पयं बहुसो[2] ॥ २०३ ॥
ण य पत्तियइ परं सो अप्पाणं पि व परं पि मण्णंतो ।
तूसदि अभित्थुवंतो ण य जाणइ हाणि वड्ढीओ[3] ॥ २०४ ॥
मरणं पत्थेइ रणे देदि सुबहुअं हि थुव्वमाणो दु ।
ण गणइ अकज्ज-कज्जं लक्खणमेदं तु काउस्स[4] ॥ २०५ ॥
जाणइ कज्जमकज्जं सेयमसेयं च सव्व-सम-पासी ।
दय-दाण-रदो य मिदू लक्खणमेदं तु तेउस्स[5] ॥ २०६ ॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

जो अतिनिद्रालु हो, दूसरोंको ठगनेमें अतिदक्ष हो, और धन-धान्यके विषयमें जिसकी अति तीव्र लालसा हो, ये सब नीललेश्यावालेके संक्षेपसे लक्षण कहे गये हैं ॥ २०२ ॥

जो दूसरोंके ऊपर क्रोध करता है, दूसरेकी निन्दा करता है, अनेक प्रकारसे दूसरोंको दुःख देता है, अथवा, दूसरोंको दोष लगाता है, अत्यधिक शोक और भयसे व्याप्त रहता है, दूसरोंको सहन नहीं करता है, दूसरोंका पराभव करता है, अपनी नाना प्रकारसे प्रशंसा करता है, दूसरेके ऊपर विश्वास नहीं करता है, अपने समान दूसरेको भी मानता है, स्तुति करनेवालेके ऊपर संतुष्ट हो जाता है, अपनी और दूसरेकी हानि और वृद्धिको नही जानता है, युद्धमें मरनेकी प्रार्थना करता है, स्तुति करनेवालेको बहुत धन दे डालता है, और कार्य अकार्यकी कुछ भी गणना नहीं करता है, ये सब कापोतलेश्यावालेके लक्षण हैं ॥२०३-२०५॥

जो कार्य-अकार्य और सेव्य-असेव्यको जानता है, सबके विषयमें समदर्शी रहता है, दया और दानमें तत्पर रहता है, और मन, वचन तथा कायसे कोमल परिणामी होता है ये सब पीतलेश्यावालेके लक्षण हैं ॥ २०६ ॥

१ प्रा. पं. १,१४६ । गो. जी. ५११. इस्सा अमरिस अतवो अविज्जमाया अहीरिया । गेद्धी पओसे य सढे पमत्ते रसलोलुए ॥ सायगवेसए य आरंभाओ अविरओ खुद्दो साहस्सिओ नरो । एयजोगसमाउत्तो नीललेसं तु परिणमे ॥ उत्त. ३४. २३-२४.

२ प्रा. पं. १,१४७ । गो. जी. ५१२ ३ प्रा. पं. १,१४८ । गो. जी. ५१३

४ प्रा. पं. १,१४९ । गो. जी. ५१४ वंके वंकसमायारे नियडिल्ले अणुज्जुए । पलिउंचगओवाहिए मिच्छादिट्ठी अणारिए ॥ उप्फासगदुट्ठवाई य तेणे यावि य मच्छरी । एयजोगसमाउत्तो काऊलेसं तु परिणमे ॥ उत्त. ३४. २५-२६.

५ प्रा. पं. १,१५० । गो. जी. ५१५. नीयावत्ती अचवले अमाई अकुऊहले । विणीयविणए दंते जोगवं उवहाणवं ॥ पियधम्मे दढधम्मे वज्जभीरू हिएसए । एयजोगसमाउत्तो तेऊलेसं तु परिणमे ॥ उत्त. ३४. २७–२८.

चागी भद्दो चोक्खो उज्जुव-कम्मो य खमइ बहुअं पि ।
साहु-गुरु-पूजण-रदो[1] लक्खणमेदं तु पम्मस्स[2] ॥ २०७ ॥
ण उ कुणइ पक्खवायं ण वि य णिदाणं समो य सव्वेसु ।
णत्थि य राय-द्दोसा[3] णेहो वि य सुक्क-लेस्सस्स[4] ॥ २०८ ॥

षड्लेश्यातीताः अलेश्याः । उक्तं च—

किण्हादि-लेस्स-रहिदा संसार-विणिग्गया अणंत-सुहा ।
सिद्धि-पुरं संपत्ता अलेस्सिया ते मुणेयव्वा[5] ॥ २०९ ॥

लेश्यानां गुणस्थाननिरूपणार्थमाह—

किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउलेस्सिया एइंदिय-प्पहुडि जाव असंजद-सम्माइट्ठि त्ति[6] ॥ १३७ ॥

जो त्यागी है, भद्रपरिणामी है, निर्मल है, निरन्तर कार्य करनेमें उद्यत रहता है, जो अनेक प्रकारके कष्टप्रद और अनिष्ट उपसर्गोंको क्षमा कर देता है, और साधु तथा गुरुजनोंकी पूजामें रत रहता है, ये सब पद्मलेश्यावालेके लक्षण हैं ॥ २०७ ॥

जो पक्षपात नहीं करता है, निदान नहीं बांधता है, सबके साथ समान व्यवहार करता है, इष्ट और अनिष्ट पदार्थोंके विषयमें राग और द्वेषसे रहित है तथा स्त्री, पुत्र और मित्र आदिमें स्नेहरहित है ये सब शुक्ललेश्यावालेके लक्षण हैं ॥ २०८ ॥

जो छह लेश्याओंसे रहित हैं उन्हें लेश्यारहित जीव कहते हैं । कहा भी है—

जो कृष्णादि लेश्याओंसे रहित हैं, पंच परिवर्तनरूप संसारसे पार हो गये हैं, जो अतीन्द्रिय और अनन्त सुखको प्राप्त हैं और जो आत्मोपलब्धिरूप सिद्धिपुरीको प्राप्त हो गये हैं उन्हें लेश्यारहित जानना चाहिये ॥ २०९ ॥

अब लेश्याओंके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्यावाले जीव एकेन्द्रियसे लेकर असंयत-सम्यग्दृष्टि गुणस्थानतक होते हैं ॥ १३७ ॥

---

१ मु. पूजणिरदो ।

२ प्रा. पं. १,१५१ । गो. जी. ५१६. पयणुकोहमाणे य मायालोभे य पयणुए । पसंतचित्ते दंतप्पा जोगवं उवहाणवं ॥ तहा पयणुवाई य उवसंते जिइंदिए । एयजोगसमाउत्तो पम्हलेसं तु परिणमे ॥ उत्त. ३४. २९-३०.   ३ मु. राय-द्दोसो ।

४ प्रा. पं. १,१५२ । गो. जी. ५१७. अट्टरुद्दाणि वज्जित्ता धम्मसुक्काणि झायए । पसंतचित्ते दंतप्पा समिए गुत्ते य गुत्तिसु ॥ सरागे वीयरागे वा उवसंते जिइंदिए । एयजोगसमाउत्तो सुक्कलेसं तु परिणमे ॥ उत्त. ३४. ३१-३२.   ५ प्रा. पं. १,१५३ गो. जी. ५५६.

६ लेश्यानुवादेन कृष्णनीलकपोतलेश्यासु मिथ्यादृष्ट्यादीनि असंयतसम्यग्दृष्ट्यन्तानि सन्ति । स. सि. १. ८.

कथम् ? त्रिविधतीव्रादिकषायोदयवृत्तेः सत्त्वात् । सुगममन्यत् ।

तेजःपद्मलेश्याध्वानप्रतिपादनार्थमाह--

तेउलेस्सिया पम्मलेस्सिया सण्णि-मिच्छाइट्ठि-प्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति ॥ १३८ ॥

कथम् ? एतेषां तीव्रादिकषायोदयाभावात् । सुगममन्यत् ।

[1]शुक्ललेश्याध्वानप्रतिपादनार्थमाह--

सुक्कलेस्सिया सण्णि-मिच्छाइट्ठि-प्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति[2] ॥ १३९ ॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

कथं क्षीणोपशान्तकषायाणां शुक्ललेश्येति चेन्न, कर्मलेपनिमित्तयोगस्य तत्र सत्त्वापेक्षया तेषां शुक्ललेश्यास्तित्वाविरोधात् ।

शंका-- चौथे गुणस्थानतक ही आदिकी तीन लेश्याएं क्यों होती हैं ?

समाधान-- तीव्रतम, तीव्रतर और तीव्र कषायके उदयका सद्भाव चौथे गुणस्थान-तक ही पाया जाता है, इसलिये वहींतक तीन लेश्याएं कहीं । शेष कथन सुगम है ।

अब पीत और पद्मलेश्याके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं--

पीतलेश्या और पद्मलेश्यावाले जीव संज्ञी मिथ्यादृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान-तक होते हैं ॥ १३८ ॥

शंका-- ये दोनों लेश्याएं सातवें गुणस्थानतक कैसे पाई जाती हैं ?

समाधान-- क्योंकि, इन लेश्यावाले जीवोंके तीव्रतम आदि कषायोंका उदय नहीं पाया जाता है । शेष कथन सुगम है ।

अब शुक्ललेश्याके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं--

शुक्ललेश्यावाले जीव संज्ञी मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक होते हैं ॥ १३९ ॥

शंका-- जिन जीवोंकी कषाय क्षीण अथवा उपशान्त हो गई है उनके शुक्ललेश्याका होना कैसे संभव है ?

समाधान-- नहीं, क्योंकि, जिन जीवोंकी कषाय क्षीण अथवा उपशान्त हो गई है उनमें कर्मलेपका कारण योग पाया जाता है, इसलिये इस अपेक्षासे उनके शुक्ललेश्याके सद्भाव मान लेनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

अब लेश्यारहित जीवोंके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं--

---

१ तेजःपद्मलेश्ययोर्मिथ्यादृष्ट्यादीनि अप्रमत्तस्थानान्तानि । स. सि. १. ८.

२ मु. पाठोऽयं नास्ति ।

३ शुक्ललेश्यायां मिथ्यादृष्ट्यादीनि सयोगकेवल्यन्तानि । स. सि. १. ८.

तेण परमलेस्सिया[1] ॥ १४० ॥

कथम् ? बन्धहेतुयोगकषायाभावात् । सुगममन्यत् ।

लेश्यामुखेन जीवपदार्थमभिधाय भव्याभव्यद्वारेण जीवास्तित्वप्रतिपादनार्थमाह—

भवियाणुवादेण अत्थि भवसिद्धिया अभवसिद्धिया ॥ १४१ ॥

भव्या भविष्यन्ती[2] सिद्धिर्येषां ते भव्यसिद्धयः । तथा च भव्यसन्ततिच्छेदः स्यादिति चेन्न, तेषामानन्त्यात् । न हि सान्तस्यानन्त्यम्, विरोधात् । सव्ययस्य निरायस्य राशेः कथमानन्त्यमिति चेन्न, अन्यथैकस्याप्यानन्त्यप्रसङ्गात्[3] । न सव्ययस्यानन्तस्य न क्षयोऽस्तीत्येकान्तोऽस्ति, स्वसंख्येयासंख्येयभागव्ययस्य राशेरनन्तस्यपि क्षयः[4], द्वित्र्यादिसंख्येयराशिव्ययतो न क्षयोऽस्तीत्यभ्युपगमात्[5] । अर्द्धपुद्गल-

---

तेरहवें गुणस्थानके आगे सभी जीव लेश्यारहित हैं ॥ १४० ॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

शंका— यह कैसे ?

समाधान— क्योंकि, वहांपर बन्धके कारणभूत योग और कषायका अभाव है । शेष कथन सुगम है ।

लेश्यामार्गणाके द्वारा जीवपदार्थका कथन करके अब भव्याभव्य मार्गणाके द्वारा जीवोंके अस्तित्वके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं ।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भवसिद्ध और अभवसिद्ध जीव होते हैं ॥ १४१ ॥

जिन्हें आगे सिद्धि प्राप्त होंगी उन्हें भव्यसिद्ध जीव कहते हैं ।

शंका— इस प्रकार तो भव्यजीवोंकी संततिका उच्छेद हो जायगा ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, भव्यजीव अनन्त होते हैं । हां, जो राशि सान्त होती है उसमें अनन्तपना नहीं बन सकता है, क्योंकि, सान्तको अनन्त माननेमें विरोध आता है ।

शंका— जिस राशिका निरन्तर व्यय चालू है, परंतु उसमें आय नहीं होती है तो उसके अनन्तपना कैसे बन सकता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, यदि सव्यय और निराय राशिको भी अनन्त न माना जावे तो एकको भी अनन्तके माननेका प्रसंग आ जायगा । व्यय होते हुए भी अनन्तका क्षय नहीं होता है, यह एकान्त नियम नहीं है, इसलिये जिसके संख्यातवें और असंख्यातवें भागका व्यय हुआ है ऐसी अनन्त राशिका क्षय भी है, किन्तु दो-तीन आदि संख्येय राशिके व्ययमात्रसे क्षय नहीं भी है ऐसा स्वीकार किया है ।

शंका— अर्धपुद्गलपरिवर्तनरूप काल अनन्त होते हुए भी उसका क्षय देखा जाता है,

---

१ अलेश्याः अयोगकेवलिनः । स. सि. १. ८.

२ मु. भविष्यन्तीति । ३ मु. प्रसङ्गः । ४ मु. रनन्तस्यापेक्षया तद्द्वित्र्यादि ।

५ एवं भव्वुच्छेओ कोट्ठागारस्स वा अवचयति त्ति । त नाणंतत्तणओऽणागयकालंबराणं व ॥ जं

परिवर्तनकालस्यानन्तस्यापि क्षयदर्शनादनैकान्तिक आनन्त्यहेतुरिति चेन्न, उभयोर्भिन्ननिबन्धनतः प्राप्तानन्तयोः साम्याभावतोऽर्द्धपुद्‌गलपरिवर्तनस्य वास्तवानन्त्याभावात् । तद्यथा–अर्द्धपुद्‌गलपरिवर्तनकालः सक्षयोऽप्यनन्तः, छद्मस्थैरनुपलब्धपर्यन्तत्वात् । केवलमनन्तस्तद्विषयत्वाद्वा । जीवराशिस्तु पुनः संख्येयराशिक्षये'ऽपि निर्मूलप्रलयाभावादनन्त इति । अथवा छद्मस्थानुपलब्ध्यपेक्षामन्तरेणानन्त्यादिति विशेषणाद्वा नानैकान्तिक इति । किं च सव्ययस्य निरवशेषक्षयेऽभ्युपगम्यमाने कालस्यापि निरवशेषक्षयो जायेत, सव्ययत्वं प्रत्यविशेषात् । अस्तु चेन्न, सकलपर्यायप्रक्षयतोऽशेषस्य वस्तुनः प्रक्षीणस्वलक्षणस्याभावापत्तेः । मुक्तिमनुपगच्छतां कथं पुनर्भव्यत्वमिति चेन्न, मुक्तिगमनयोग्यतापेक्षया तेषां भव्यव्यपदेशात् । न च योग्याः

इसलिये भव्य राशिके क्षय न होनेमें जो अनन्तरूप हेतु दिया है वह व्यभिचरित हो जाता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, भिन्न भिन्न कारणोंसे अनन्तपनेको प्राप्त भव्यराशि और अर्धपुद्‌गल-परिवर्तनरूप काल इन दोनों राशियोंमें समानताका अभाव है, और इसलिये अर्धपुद्‌गलपरिवर्तन काल वास्तवमें अनन्तरूप नहीं है । आगे इसीका स्पष्टीकरण करते हैं—

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अर्धपुद्‌गल-परिवर्तनकाल क्षयसहित होते हुए भी अनन्त है, क्योंकि, छद्मस्थ जीवोंके द्वारा उसका अन्त नहीं पाया जाता है । अथवा केवलज्ञान अनन्त है और उसका विषय होनेसे वह अनन्त है । जीवराशि तो संख्यातवें भागरूप राशिके क्षय हो जाने पर भी निर्मूल नाश नहीं होनेसे, अनन्त है । अथवा, पहले जो भव्य राशिके क्षय नहीं होनेमें अनन्तरूप हेतु दे आये हैं उसमें 'छद्मस्थ जीवोंके द्वारा अनन्तकी उपलब्धि नहीं होती है, इस अपेक्षाके विना ही ' यह विशेषण लगा देनेसे अनैकान्तिक दोष नहीं आता है । दूसरे व्ययसहित अनन्तके सर्वथा क्षय मान लेनेपर कालका भी सर्वथा क्षय हो जायगा, क्योंकि, व्ययसहित होनेके प्रति दोनों समान हैं ।

शंका— यदि ऐसा ही मान लिया जाय तो क्या हानि है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, ऐसा माननेपर कालकी समस्त पर्यायोंके क्षय हो जानेसे संपूर्ण द्रव्योंकी स्वलक्षणरूप पर्यायोंका भी अभाव हो जायगा और इसलिये समस्त वस्तुओंके अभावकी आपत्ति आ जायगी ।

शंका— मुक्तिको नहीं जानेवाले जीवोंके भव्यपना कैसे बन सकता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, मुक्ति जानेकी योग्यताकी अपेक्षा उनके भव्य संज्ञा बन जाती है । जितने भी जीव मुक्ति जानेके योग्य होते हैं वे सब नियमसे कलंकरहित होते हैं

चातीताणागयकाला तुल्ला जओ य संसिद्धो । एक्को अणंतभागो भव्वाणमईयकालेणं ॥ एस्सेण तत्तिओ च्चिय जुत्तो जं तो वि सव्वभव्वाणं । जुत्तो न समुच्छेओ होज्ज मई कहमिणं सिद्धं । भव्वाणमणंतत्तणमणंतभागो व किह व मुक्को सि । कालादओ व मंडिय मह वयणाओ व पडिवज्ज ॥ वि. भा. २३०६–२३०९.

१ मु. क्षयोऽपि ।

सर्वेऽपि नियमेन निष्कलङ्का भवन्ति, सुवर्णपाषाणेन व्यभिचारात् । उक्तं च---

एय-णिगोद-सरीरे जीवा दव्व-प्पमाणदो दिट्ठा ।
सिद्धेहि अणंत-गुणा सव्वेण वितीद-कालेण[1] ॥ २१० ॥

तद्विपरीताः अभव्याः । उक्तं च---

भविया सिद्धी जेसिं जीवाणं ते भवंति भव-सिद्धा ।
तव्विवरीदाभव्वा संसारादो ण सिज्झंति[2] ॥ २११ ॥

भव्यगुणस्थानप्रतिपादनार्थमाह---

भवसिद्धिया एइंदिय-प्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति[3] ॥१४२॥

सुगममेतत् ।

अभव्यानां गुणस्थाननिरूपणायाह---

अभवसिद्धिया एइंदिय-प्पहुडि जाव सण्णि-मिच्छाइट्ठि त्ति[4] ॥ १४३ ॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि, सर्वथा ऐसा मान लेने पर स्वर्णपाषाणसे व्यभिचार आ जायगा । कहा भी है---

द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा सिद्धराशिसे और संपूर्ण अतीत कालसे अनन्तगुणे जीव एक निगोदशरीरमें देखे गये हैं ॥ २१० ॥

भव्योंसे विपरीत अर्थात् मुक्तिगमनकी योग्यता न रखनेवाले अभव्य जीव होते हैं । कहा भी है---

जिन जीवोंकी अनन्तचतुष्टयरूप सिद्धि होनेवाली हो अथवा जो उसकी प्राप्तिके योग्य हो उन्हें भव्यसिद्ध कहते हैं । और इनसे विपरीत अभव्य होते हैं । ये संसारसे निकलकर कभी भी मुक्तिको प्राप्त नहीं होते हैं ॥ २११ ॥

अब भव्यजीवोंके गुणस्थानोंका प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं---

भव्यसिद्ध जीव एकेन्द्रियसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थानतक होते हैं ॥ १४२ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है---

अब अभव्यजीवोंके गुणस्थानका निरूपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं---

अभव्यसिद्ध जीव एकेन्द्रियसे लेकर संज्ञी मिथ्यादृष्टि गुणस्थानतक होते हैं ॥ १४३ ॥

---

१ प्रा. पं. १,८४ । गो. जी. १९६.

२ प्रा. पं. १,१५६ । गो. जी. ५५७ (भवसिद्धा) अनेन सिद्धेर्लब्धियोग्यताभ्यां भव्यानां द्वैविध्यमुक्तं । जी. प्र. टी.　३ भव्यानुवादेन भव्येषु चतुर्दशापि सन्ति । स. सि. १. ८.

४ अभव्य आद्य एव स्थाने । स. सि. १. ८.

एतदपि सुगमम् ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सम्मत्ताणुवादेण अत्थि सम्माइट्ठी खइयसम्माइट्ठी वेदग-सम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी मिच्छाइट्ठी चेदि ॥ १४४ ॥

आम्रवनान्तःस्थनिम्बानामाम्रवनव्यपदेशवन्मिथ्यात्वादीनां सम्यक्त्वव्यपदेशो न्याय्यः । सुगममन्यत् । उक्तं च--

छप्पंच-णव-विहाणं अत्थाणं जिणवरोवइट्ठाणं ।
आणाए अहिगमेण व सद्दहणं होइ सम्मत्तं[1] ॥ २१२ ॥
खीणे दंसण-मोहे जं सद्दहणं सुणिम्मलं होई ।
तं खाइय-सम्मत्तं णिच्चं कम्म-क्खवण-हेऊ[2] ॥ २१३ ॥
वयणेहि वि हेऊहि वि इंदिय-भय-आणएहि रूवेहि ।
बीहच्छ-दुगुंछाहि ण सो ते-लोक्केण चालेज्ज[3] ॥ २१४ ॥

इस सूत्रका अर्थ भी सुगम है ।

अब सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे जीवोंके अस्तित्वके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं---

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं ॥१४४॥

जिस प्रकार आम्रवनके भीतर रहनेवाले नीमके वृक्षोंको आम्रवन यह संज्ञा प्राप्त हो जाती है, उसी प्रकार मिथ्यात्व आदिको सम्यक्त्व यह संज्ञा देना उचित ही है । शेष कथन सुगम है । कहा भी है---

जिनेन्द्रदेवके द्वारा उपदिष्ट छह द्रव्य, पांच अस्तिकाय और नव पदार्थोंका आज्ञा अथवा अधिगमसे श्रद्धान करनेको सम्यक्त्व कहते हैं ॥ २१२ ॥

दर्शनमोहनीय कर्मके सर्वथा क्षय हो जाने पर जो निर्मल श्रद्धान होता है वह क्षायिक सम्यक्त्व है । जो नित्य है और कर्मोंके क्षपणका कारण है ॥ २१३ ॥

श्रद्धानको भ्रष्ट करनेवाले वचन या हेतुओंसे अथवा इन्द्रियोंको भय उत्पन्न करनेवाले

---

१ प्रा. पं. १,१५९ । गाथेयं पूर्वमपि ९६ गाथाङ्केन आगता । तहियाणं तु भावाणं सब्भावे उवएसणं । भावेणं सद्दहंतस्स सम्मत्तं तं वियाहियं ॥ उत्त. २८. १५.

२ प्रा. पं. १,१६० । गो. जी. ६४६.   ३ प्रा. पं. १,१६१ । गो. जी. ६४७.

दंसणमोहुदयादो उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं ।
चल-मलिनमगाढं तं वेदग-सम्मत्तमिह मुणसु[1] ॥ २१५ ॥
दंसणमोहुवसमदो उप्पज्जइ जं पयत्थ-सद्दहणं ।
उवसम-सम्मत्तमिणं पसण्ण-मल-पंक तोय-समं[2] ॥ २१६ ॥

सम्यग्दर्शनस्य सामान्यस्य क्षायिकसम्यग्दर्शनस्य च गुणनिरूपणार्थमाह—

सम्माइट्ठी खइयसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठि-प्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति[3] ॥ १४५ ॥

किं तत्सम्यक्त्वगतसामान्यमिति चेत्, त्रिष्वपि सम्यग्दर्शनेषु यः साधारणोंऽशस्तत्सामान्यम् । क्षायिकक्षायोपशमिकौपशमिकेषु परस्परतो भिन्नेषु किं सादृश्यमिति

आकारोंसे या बीभत्स अर्थात् निन्दित पदार्थोंके देखनेसे उत्पन्न हुई ग्लानिसे, किंबहुना तीन लोकसे भी वह क्षायिक सम्यग्दर्शन चलायमान नहीं होता है ॥ २१४ ॥

सम्यक्त्वमोहनीय प्रकृतिके उदयसे पदार्थोंका जो चल, मलिन और अगाढ़रूप श्रद्धान होता है उसको वेदक सम्यग्दर्शन कहते हैं ऐसा हे शिष्य तू समझ ॥ २१५ ॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

दर्शनमोहनीयके उपशमसे कीचड़के नीचे बैठ जानेसे निर्मल जलके समान पदार्थोंका, जो निर्मल श्रद्धान होता है वह उपशमसम्यग्दर्शन है ॥ २१६ ॥

अब सामान्य सम्यग्दर्शन और क्षायिकसम्यग्दर्शनके गुणस्थानोंके निरूपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

सामान्यसे सम्यग्दृष्टि और विशेषकी अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थानतक होते हैं ॥ १४५ ॥

शंका— सम्यक्त्वमें रहनेवाला वह सामान्य क्या वस्तु है ?

समाधान— तीनों ही सम्यग्दर्शनोंमें जो साधारण धर्म है वह सामान्य शब्दसे यहां पर विवक्षित है ।

शंका— क्षायिक, क्षायोपशमिक और औपशमिक सम्यग्दर्शनोंके परस्पर भिन्न भिन्न

१ प्रा. पं. १,१६६ पाठभेदः । गो. जी. ६४९. नानात्मीयविशेषेषु चलतीति चलं स्मृतं । लसत्कल्लोलमालासु जलमेकमवस्थितं ॥ स्वकारितेऽर्हच्चैत्यादौ देवोऽयं मेऽन्यकारिते । अन्यस्यायमिति भ्राम्यन् मोहाच्छ्राद्धोऽपि चेष्टते ॥ तदप्यलब्धमाहात्म्यं यकात् सम्यक्त्वकर्मणः । मलिनं मलसंगेन शुद्धं स्वर्णमिवोद्भवेत् ॥ स्थान एव स्थितं कंप्रमगाढमिति कीर्त्यते । वृद्धयष्टिरिवात्यक्तस्थाना करतले स्थिता ॥ समेऽप्यनन्तशक्तित्वे सर्वेषामर्हतामयं । देवोऽस्मै प्रभुरेषोऽस्मा इत्यास्था सुदृशामपि ॥ गो. जी. २५. जी. प्र. टी. उद्धृता.

२ गो. जी. ६५०.

३ सम्यक्त्वानुवादेन क्षायिकसम्यक्त्वे असंयतसम्यग्दृष्टयादीनि अयोगकेवल्यन्तानि सन्ति । स. सि. १. ८.

चेन्न, तत्र यथार्थश्रद्धानं प्रति साम्योपलम्भात्। क्षयक्षयोपशमोपशमविशिष्टानां यथार्थश्रद्धानानां कथं समानतेति चेद्भवतु विशेषणानां भेदो न विशेष्यस्य यथार्थश्रद्धानस्य। सुगममन्यत्।

वेदकसम्यग्दर्शनगुणसंख्याप्रतिपादनार्थमाह--

वेदगसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठि-प्पहुडि जाव अप्पमत्त-संजदा त्ति[1] ॥ १४६ ॥

उपरितनगुणेषु किमिति वेदकसम्यक्त्वं नास्तीति चेन्न, अगाढसमलश्रद्धानेन सह क्षपकोपशमकश्रेण्यारोहणानुपपत्तेः। वेदकसम्यक्त्वादौपशमिकसम्यक्त्वस्य कथमाधिक्यतेति चेन्न, दर्शनमोहोदयजनितशैथिल्यादेस्तत्रासत्त्वतस्तदाधिक्योपलम्भात्।

होने पर सदृशता क्या वस्तु हो सकती है ?

समाधान-- नहीं, क्योंकि, उन तीनों सम्यग्दर्शनोंमें यथार्थ श्रद्धानके प्रति समानता पाई जाती है।

शंका-- क्षय, क्षयोपशम और उपशम विशेषणसे युक्त यथार्थ श्रद्धानोंमें समानता कैसे हो सकती है ?

समाधान-- विशेषणोंमें भेद भले ही रहा आवे, परंतु इससे यथार्थ श्रद्धारूप विशेष्यमें भेद नहीं पड़ता है।

शेष सूत्रका अर्थ सुगम है।

अब वेदकसम्यग्दर्शनके गुणस्थानोंकी संख्याके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं--

वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थानतक होते हैं ॥ १४६ ॥

शंका-- ऊपरके आठवें आदि गुणस्थानोंमें वेदकसम्यग्दर्शन क्यों नहीं होता है ?

समाधान-- नहीं होता, क्योंकि, अगाढ़ आदि मलसहित श्रद्धानके साथ क्षपक और उपशम श्रेणीका चढ़ना नहीं बनता है।

शंका-- वेदकसम्यग्दर्शनसे औपशमिक सम्यग्दर्शनकी अधिकता अर्थात् विशेषता कैसे संभव है ?

समाधान-- नहीं, क्योंकि, दर्शनमोहनीयके उदयसे उत्पन्न हुई शिथिलता आदि औपशमिक सम्यग्दर्शनमें नहीं पाई जाती है, इसलिये वेदकसम्यग्दर्शनसे औपशमिकसम्यग्दर्शनमें विशेषता सिद्ध हो जाती है।

१ क्षायोपशमिकसम्यक्त्वे असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि अप्रमत्तान्तानि। स. सि. १. ८.

कथमस्य वेदकसम्यग्दर्शनव्यपदेश इति चेदुच्यते । दर्शनमोहवेदको वेदकः, तस्य सम्यग्दर्शनं वेदकसम्यग्दर्शनम् । कथं दर्शनमोहोदयवतां सम्यग्दर्शनस्य सम्भव इति चेन्न, दर्शनमोहनीयस्य देशघातिन उदये सत्यपि जीवस्वभावश्रद्धानस्यैकदेशोत्पत्त्य-[1]

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

विरोधात् । देशघातिनो दर्शनमोहनीयस्य कथं सम्यग्दर्शनव्यपदेश इति चेन्न, सम्यग्दर्शनसाहचर्यात्तस्य तद्व्यपदेशाविरोधात् ।

औपशमिकसम्यग्दर्शनगुणस्थानप्रतिपादनार्थमाह--

उवसमसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठि-प्पहुडि जाव उवसंत-कसाय-वीयराय-छदुमत्था त्ति[2] ॥ १४७ ॥

सुगममेतत् ।

सासणसम्माइट्ठी एक्कम्मि चेय सासणसम्माइट्ठि-ट्ठाणे॥१४८॥

शंका--- क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शनको वेदक सम्यग्दर्शन यह संज्ञा कैसे प्राप्त होती है ?

समाधान--- दर्शनमोहनीय कर्मके उदयका वेदन करनेवाले जीवको वेदक कहते हैं। उसके जो सम्यग्दर्शन होता है उसे वेदकसम्यग्दर्शन कहते हैं ।

शंका--- जिनके दर्शनमोहनीय कर्मका उदय विद्यमान है उनके सम्यग्दर्शन कैसे पाया जा सकता है ?

समाधान--- नहीं, क्योंकि, दर्शनमोहनीयकी देशघाति प्रकृतिके उदय रहने पर भी जीवके स्वभावरूप श्रद्धानके एकदेश की उत्पत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

शंका--- दर्शनमोहनीयकी देशघाति प्रकृतिको सम्यग्दर्शन यह संज्ञा कैसे दी गई ?

समाधान--- नहीं, क्योंकि, सम्यग्दर्शनके साथ सहचर संबन्ध होनेके कारण उसको सम्यग्दर्शन इस संज्ञाके देनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

अब औपशमिक सम्यग्दर्शनके गुणस्थानोंके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं---

उपशमसम्यग्दृष्टि जीव असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर उपशान्त-कषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थानतक होते हैं ॥ १४७ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

अब सासादनसम्यक्त्व आदि संबन्धी गुणस्थानोंके प्रतिपादन करनेके लिये तीन सूत्र कहते हैं---

सासादनसम्यग्दृष्टि जीव एक सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें ही होते हैं ॥ १४८ ॥

---

१ मु. देशे सत्य ।

२ औपशमिकसम्यक्त्वे असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि उपशान्तकषायान्तानि । स. सि. १. ८.

मार्गदर्शक — आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सम्मामिच्छाइट्ठी एक्कम्मि चेय सम्मामिच्छाइट्ठिट्ठाणे ॥ १४९ ॥

मिच्छाइट्ठी एइंदिय-प्पहुडि जाव सण्णि-मिच्छाइट्ठि[1] त्ति ॥ १५० ॥

सुगमत्वात्त्रिष्वप्येतेषु सूत्रेषु न वक्तव्यमस्ति । वुत्तं[2] च—

ण य मिच्छत्तं पत्तो सम्मत्तादो य जो दु परिवदिदो ।
सो सासणो त्ति णेयो सादिय मध पारिणामिओ भावो ॥ २१७ ॥
सद्दहणासद्दहणं जस्स य जीवस्स होइ तच्चेसु ।
विरदाविरदेण समो सम्मामिच्छो त्ति णादव्वो ॥ २१८ ॥
ण वि जायइ ण वि मरइ ण वि सुद्धो ण वि य कम्म-उम्मुक्को ।
चउगइमज्झत्थे वुण रागाइ-समण्णियो जीवो ॥ २१९ ॥
तिण्णि जणा एक्केक्कं दोह्णे णेच्छंति ते तिवग्गा य ।
एक्को तिण्णि ण इच्छइ सत्त वि पावंति मिच्छत्तं ॥ २२० ॥

सम्यग्दर्शनादेशप्रतिपादनार्थमाह—

णेरइया अत्थि मिच्छाइट्ठी सासण-सम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठि त्ति ॥ १५१ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ही होते हैं ॥ १४९ ॥

मिथ्यादृष्टि जीव एकेन्द्रियसे लेकर संज्ञी मिथ्यादृष्टितक होते हैं ॥ १५० ॥

इन तीनों सूत्रोंका अर्थ सुगम है, अतएव इनके विषयमें अधिक कुछ भी नहीं कहना है । कहा भी है—

जो सम्यक्त्वसे गिरकर मिथ्यात्वको नही प्राप्त हुआ है, उसे सासादन सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए । यह गुणस्थान सादि और पारिणामिक भाववाला है ॥ २१७ ॥

जिस जीवके जीवादिक तत्त्वोंमें श्रद्धान और अश्रद्धान रूप भाव है, उसे विरताविरतके समान सम्यग्मिथ्यादृष्टि जानना चाहिए ॥ २१८ ॥

वह न जन्म लेता है, न मरता है, न शुद्ध होता है और न कर्मसे उन्मुक्त होता है । किन्तु वह रागादिसे युक्त होकर चारों गतियोंमें पाया जाता है ॥ २१९ ॥

ऐसे तीन जन जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र इन तीनोंमेंसे किसी एक एक को (मोक्षमार्ग) स्वीकार नहीं करते, दूसरे ऐसे तीन जन जो इन तीनोंमेंसे दो दो को (मोक्षमार्ग) स्वीकार नहीं करते तथा कोई ऐसा भी जीव हो जो तीनोंको (मोक्षमार्ग) स्वीकार नहीं करता ये सातों जीव मिथ्यात्वी है ॥ २२० ॥

अब सम्यग्दर्शनका मार्गणाओंमें निरूपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

नारकी जीव मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत

---

१ सासादनसम्यग्दृष्टिः सम्यग्मिथ्यादृष्टिर्मिथ्यादृष्टिश्च स्वे स्वे स्थाने । स. सि. १. ८.

२ ब. प्रतौ 'वुत्तंच' इत्यत आरम्य गाथाचतुष्कमिदं नास्ति । मु. प्रतावपि नास्ति ।

अथ स्याद्गतिनिरूपणायामस्यां गतौ इयन्ति गुणस्थानानि सन्ति, इयन्ति न सन्तीति निरूपितत्वान्न वक्तव्यमिदं सूत्रम्, सम्यक्त्वनिरूपणायां गुणस्थाननिरूपणावसराभावाच्चेति न, विस्मृतपूर्वोक्तार्थस्य प्रतिपाद्यस्य तमर्थं संस्मार्य तत्र तत्र गतौ सम्यग्दर्शनभेदप्रतिपादनप्रवणत्वात् । सुगममन्यत् ।

एवं जाव सत्तसु पुढवीसु ॥ १५२ ॥

कथं सामान्यवद्विशेषः स्यादिति चेन्न, विशेषव्यतिरिक्तसामान्यस्यासत्त्वात् । नाव्यतिरेकोऽपि द्वयोरभावासञ्जनात्[1] । नोभयपक्षोऽपि पक्षद्वयोक्तदोषासञ्जनात्[2] । नानुभयपक्षोऽपि निःस्वभावत्वप्रसङ्गात् । न च सामान्यविशेषयोरभाव एव प्राप्तजात्यन्तरत्वेनोपलम्भात् । ततः सूक्तमेतदिति स्थितम् ।

मार्गदर्शक: आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सम्यग्दृष्टि होते हैं ॥ १५१ ॥

शंका— गतिमार्गणाका निरूपण करते समय 'इस गतिमें इतने गुणस्थान होते हैं और इतने नहीं होते हैं' इस बातका निरूपण कर ही आये हैं, इसलिये इस सूत्रके कथनकी कोई आवश्यकता नहीं है। तथा सम्यग्दर्शनमार्गणाका निरूपण करते समय गुणस्थानोंके निरूपणका अवसर नहीं है, इसलिये भी इस सूत्रके कथनकी आवश्यकता नहीं है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, जो शिष्य पूर्वोक्त अर्थको भूल गया है उसके लिये, उस अर्थका पुनः स्मरण कराके उन उन गतियोंमें सम्यग्दर्शनके भेदोंके प्रतिपादन करनेमें यह सूत्र समर्थ है, इसलिये इस सूत्रका अवतार हुआ है । शेष कथन सुगम है ॥

अब सातों पृथिवियोंमें सम्यग्दर्शनके निरूपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें प्रारम्भके चार गुणस्थान होते हैं ॥ १५२ ॥

शंका— सामान्यके समान विशेष कैसे हो सकता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, विशेषको छोड़कर सामान्य नहीं पाया जाता है, इसलिये सामान्य कथनसे विशेषका भी बोध हो जाता है । इससे सामान्य और विशेषमें सर्वथा अभेद भी नहीं है, क्योंकि, दोनोंमें सर्वथा अभेद मान लेने पर दोनोंका अभाव हो जायगा । इसी प्रकार इन दोनोंमें सर्वथा उभयपक्ष अर्थात् सर्वथा भेद और सर्वथा अभेद भी नहीं है, क्योंकि, ऐसा माननेपर दोनों पक्षमें दिये गये दोष प्राप्त हो जायेंगे । सामान्य और विशेष सर्वथा अनुभयरूप भी नहीं हैं, क्योंकि, ऐसा मान लेनेपर वस्तुको निःस्वभावताका प्रसंग आ जायगा । तथा सामान्य और विशेषका अभाव भी नहीं है, क्योंकि, जात्यन्तर अवस्थाको प्राप्त होने रूपसे उन दोनोंकी उपलब्धि होती है । इसलिये पूर्वमें जो कथन किया है वह ठीक है, यह बात निश्चित हो जाती है ।

---

१ मु. भावासञ्जननात् । २ मु. दोषासंजननात् ।

सम्यग्दर्शनविशेषप्रतिपादनार्थमाह--

णेरइया असंजदसम्माइट्ठि-ट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठी वेदग-सम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी चेदि ॥ १५३ ॥

सुगममेतत् ।

एवं पढमाए पुढवीए णेरइआ ॥ १५४ ॥

एतदपि सुबोध्यम् ।

विदियादि जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइया असंजदसम्माइट्ठि-ट्ठाणे खइयसम्माइट्ठी णत्थि, अवसेसा अत्थि ॥ १५५ ॥

सप्तप्रकृतीषु क्षीणासु किमिति तत्र नोत्पद्यन्त इति चेत्स्वाभाव्यात् । तत्रस्थाः सन्तः किमिति सप्तप्रकृतीर्न क्षपयन्तीति चेन्न, तत्र जिनानामभावात् ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अब सम्यग्दर्शनका मार्गणाओंमें प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं--

नारकी जीव असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं ॥ १५३ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

अब प्रथम पृथिवीमें सम्यग्दर्शन बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं--

इसी प्रकार प्रथम पृथिवीमें नारकी जीव होते हैं ॥ १५४ ॥

इस सूत्रका अर्थ भी सुबोध है ।

अब शेष पृथिवियोंमें सम्यग्दर्शनके निरूपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं--

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवी पृथिवीतक नारकी जीव असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि नहीं होते हैं । शेषके दो सम्यग्दर्शनोंसे युक्त होते हैं ॥१५५ ॥

शंका-- सम्यक्त्वकी प्रतिबन्धक सात प्रकृतियोंके क्षय हो जानेपर क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव द्वितीयादि पृथिवियोंमें क्यों उत्पन्न नहीं होते हैं ?

समाधान-- ऐसा स्वभाव ही है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव द्वितीयादि पृथिवियोंमें नहीं उत्पन्न होते हैं ।

शंका-- द्वितीयादि पृथिवियोंमें रहनेवाले नारकी सम्यक्त्वकी प्रतिबन्धक सात प्रकृतियोंका क्षय क्यों नहीं करते हैं ?

समाधान-- नहीं, क्योंकि, वहांपर जिनेन्द्रदेवका अभाव है ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

तिर्यग्गतिविशेषप्रतिपादनार्थमाह—

तिरिक्खा अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी संजदासंजदा त्ति ॥ १५६ ॥

संन्यस्तशरीरत्वात्त्यक्ताहाराणां तिरश्चां किमिति संयमो न भवेदिति चेन्न, अन्तरङ्गायाः सकलनिवृत्तेरभावात् । किमिति तदभावश्चेज्जातिविशेषात् ।

एवं जाव सव्व-दीव-समुद्देसु ॥ १५७ ॥

स्वयम्प्रभादारान्मानुषोत्तरात्परतो भोगभूमिसमानत्वान्न तत्र देशव्रतिनः सन्ति तत एतत्सूत्रं न घटत इति न, वैरसम्बन्धेन देवैर्दानवैर्वोत्क्षिप्य क्षिप्तानां देशव्रतीनां सर्वत्र[1] सत्त्वाविरोधात् ।

सम्यग्दर्शनविशेषप्रतिपादनार्थमाह—

तिरिक्खा असंजदसम्माइट्ठि-ट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठि वेदग-सम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी ॥ १५८ ॥

अब तिर्यंच गतिमें विशेष प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

तिर्यंच मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत होते हैं ॥ १५६ ॥

शंका— शरीरसे संन्यास ग्रहण कर लेनेके कारण जिन्होंने आहारका त्याग कर दिया है ऐसे तिर्यंचोंके संयम क्यों नहीं होता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, उनके अन्तरंग सकल-निवृत्तिका अभाव है ।

शंका— उनके अन्तरंग सकल-निवृत्तिका अभाव क्यों है ?

समाधान— जिस जातिमें वे उत्पन्न हुए हैं उसमें संयम नहीं होता यह नियम है, इसलिये उनके संयम नहीं पाया जाता है ।

इसी प्रकार संपूर्ण द्वीप-समुद्रवर्ती तिर्यंचोंमें समझना चाहिये ॥ १५७ ॥

शंका— स्वयंभूरमण द्वीपवर्ती स्वयंप्रभ पर्वतके इस ओर और मानुषोत्तर पर्वतके उस ओर (असंख्यात द्वीप-समुद्रोंमें) भोगभूमिके समान रचना होनेसे वहांपर देशव्रती नहीं पाये जाते हैं, इसलिये यह सूत्र घटित नहीं होता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, वैरके संबन्धसे देवों अथवा दानवोंके द्वारा उठाकर डाले गये देशव्रती तिर्यंचोंका सब जगह सद्भाव होनेमें कोई विरोध नहीं आता है, इसलिये वहांपर तिर्यंचोंके पांचों गुणस्थान बन जाते हैं ।

अब तिर्यंचोंमें सम्यग्दर्शनके भेदोंका प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं ॥ १५८ ॥

---

१ क्षिप्तानां सर्वत्र ।

सुगमम् ।

तिरिक्खा संजदासंजद-ट्ठाणे खइयसम्माइट्ठी णत्थि अवसेसा अत्थि ॥ १५९ ॥

तिर्यक्षु क्षायिकसम्यग्दृष्टयः संयतासंयताः किमिति न सन्तीति चेन्न, क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां भोगभूमिमन्तरेणोत्पत्तेरभावात्। न च भोगभूमावुत्पन्नानामणुव्रतोपादानं सम्भवति तत्र तद्विरोधात् । सुगममन्यत् ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

एवं पंचिंदिय-तिरिक्खा पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्ता ॥ १६० ॥

एतदपि सुबोध्यम् ।

पंचिंदिय-तिरिक्ख-जोणिणीसु असंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजद-ट्ठाणे खइयसम्माइट्ठी णत्थि, अवसेसा अत्थि ॥ १६१ ॥

तत्र क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामुत्पत्तेरभावात्तत्र दर्शनमोहनीयस्य क्षपणाभावाच्च ।

मनुष्यादेशप्रतिपादनार्थमाह--

यह सूत्र सुगम है ।

तिर्यंच संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि नहीं होते हैं । शेष दो सम्यग्दर्शनोंसे युक्त होते हैं ॥ १५९ ॥

शंका— तिर्यंचोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संयतासंयत क्यों नहीं होते हैं ?

समाधान-- नहीं, क्योंकि, तिर्यंचोंमें यदि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न होते हैं तो वे भोगभूमिमें ही उत्पन्न होते हैं, दूसरी जगह नहीं । परंतु भोगभूमिमें उत्पन्न हुए जीवोंके अणुव्रतकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है, क्योंकि, वहांपर अणुव्रतके होनेमें आगमसे विरोध आता है । शेष कथन सुगम है ।

इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच और पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-पर्याप्त होते हैं ॥ १६० ॥

इस सूत्रका अर्थ भी सुबोध है ।

पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि नहीं होते हैं । शेष दो सम्यग्दर्शनोंसे युक्त होते हैं ॥ १६१ ॥

क्योंकि, उनमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव मरकर उत्पन्न नहीं होते हैं और जो वहां उत्पन्न होते हैं उनके दर्शनमोहनीयका क्षय नहीं होता है, अतः उनमें क्षायिक सम्यग्दर्शन नहीं पाया जाता है ।

मणुसा[1] अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी संजदासंजदा संजदा त्ति ॥ १६२ ॥

सुगममेतत् ।

एवमड्ढाइज्ज–दीव–समुद्देसु ॥ १६३ ॥

वैरसम्बन्धेन क्षिप्तानां संयतानां संयतासंयतानां च सर्वद्वीपसमुद्रेषु संभवो भवत्विति चेन्न मानुषोत्तरात्परतो देव[2]प्रयोगतोऽपि मानुषाणां[3] गमनाभावात् । न हि स्वतोऽसमर्थमन्यतः समर्थं[4] भवति, अतिप्रसङ्गात् । अथ स्यादर्धतृतीयशब्देन किमु द्वीपो विशेष्यते[5] उत समुद्र उत द्वावपीति ? नान्त्योपान्त्यविकल्पौ मानुषोत्तरात्परतोऽपि मनुष्याणामस्तित्वप्रसङ्गात् । अस्तु चेन्न, द्वीपत्रये मनुष्याणां सत्त्वप्रसङ्गात् । नैतदपि[6], सूत्रविरोधात् । नादिविकल्पोऽपि, समुद्राणां संख्यानियमाभावतः सर्वसमुद्रेषु तत्सत्त्वप्रसङ्गादिति ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अब मनुष्योंमें विशेष प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

मनुष्य मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयत होते हैं ॥ १६२ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है—

इसीप्रकार ढाई द्वीप और दो समुद्रोंमें जानना चाहिये ॥ १६३ ॥

शंका— वैरके संबन्धसे डाले गये संयत और संयतासंयत आदि मनुष्योंका संपूर्ण द्वीप और समुद्रोंमें सद्भाव रहा आवे, ऐसा मान लेनेमें क्या हानि है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, मानुषोत्तर पर्वतके उस तरफ देवोंकी प्रेरणासे भी मनुष्योंका गमन नहीं हो सकता है । ऐसा न्याय भी है कि जो स्वतः असमर्थ होता है वह दूसरोंके संबन्धसे भी समर्थ नहीं हो सकता है । यदि ऐसा न होवे तो अतिप्रसंग दोष आ जायगा । अतः मानुषोत्तरके उस ओर मनुष्य नहीं पाये जाते हैं ।

शंका— अर्धतृतीय शब्द द्वीपका विशेषण है या समुद्रका अथवा दोनोंका ? इनमेंसे अन्तके दो विकल्प तो बराबर नहीं हैं, क्योंकि, वैसा मान लेने पर मानुषोत्तर पर्वतके उस तरफ भी मनुष्योंके अस्तित्वका प्रसंग आ जायगा । यदि यह कहा जावे कि अच्छी बात है, मानुषोत्तरके परे भी मनुष्य पाये जावें, सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, इस प्रकार तो तीन द्वीपोंमें मनुष्योंके सद्भावका प्रसंग आता है । और वैसा है नहीं, क्योंकि, सूत्रसे विरोध

---

१ मु. मणुस्सा । २ मु. देवस्य । ३ मु. मनुष्याणां । ४ मु. समर्थोऽन्यतः समर्थो । ५ मु. विशिष्यते. । ६ न तदपि ।

अत्र प्रतिविधीयते । नान्त्योपान्त्यविकल्पोक्तदोषाः समाढौकन्ते, तयोरनभ्युपगमात् । न प्रथमविकल्पोक्तदोषोऽपि, द्वीपेष्वर्धतृतीयसंख्येषु मनुष्याणामस्तित्वनियमे सति शेषद्वीपेषु मनुष्याभावसिद्धिवन्मानुषोत्तरत्वं प्रत्यविशेषतः शेषसमुद्रेषु तदभावसिद्धेः । नाशेषसमुद्राणां मानुषोत्तरत्वमसिद्धमारात्तनद्वीपभागस्याप्यन्यथा मानुषोत्तरत्वानुपपत्तेः । ततः सामर्थ्याद् द्वयोः समुद्रयोः सन्तीत्यनुक्तमप्यवगम्यते ।

सम्यग्दर्शनविशेषप्रतिपादनार्थमाह—

मणुसा असंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजद-संजद-ट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठी[1] वेदयसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी ॥ १६४ ॥

सुगमत्वान्नात्र वक्तव्यमस्ति ।

एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु ॥ १६५ ॥

एतदपि सुगमम् ।

आता है। इसी प्रकार पहला विकल्प भी नहीं बन सकता है, क्योंकि, इस प्रकार द्वीपोंकी संख्याका नियम होने पर भी समुद्रोंकी संख्याका कोई नियम नहीं बनता है, इसलिये समस्त समुद्रोंमें मनुष्योंके सद्भावका प्रसंग प्राप्त होता है?

सम्पादक - आचार्य श्री सुपार्श्वसागर जी महाराज

समाधान— दूसरे और तीसरे विकल्पमें दिये गये दोष तो प्राप्त ही नहीं होते हैं, क्योंकि, परमागममें वैसा माना ही नहीं गया है। इसी प्रकार प्रथम विकल्पमें दिया गया दोष भी प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि, ढाई द्वीपमें मनुष्योंके अस्तित्वका नियम हो जानेपर शेषके द्वीपोंमें जिस प्रकार मनुष्योंके अभावकी सिद्धि हो जाती है उसी प्रकार शेष समुद्रोंमें भी मनुष्योंका अभाव सिद्ध हो जाता है, क्योंकि, ढाई द्वीपोंको छोड़कर शेष द्वीपोंकी तरह दो समुद्रोंके अतिरिक्त शेष समुद्र भी मानुषोत्तरसे परे हैं, अतः शेष द्वीपोंकी तरह शेष समुद्रोंके भी मानुषोत्तरसे परे होनेमें कोई विशेषता नहीं है। इस प्रकार शेष द्वीपोंके लिये जो नियम लागू है वही शेष समुद्रोंके लिये भी हो जाता है। इसलिये शेष समुद्रोंमें मनुष्योंका अभाव है यह बात निश्चित हो जाती है। शेषके संपूर्ण समुद्रोंका मानुषोत्तर पर्वतके उस तरफ होना असिद्ध भी नहीं है, अन्यथा समीपवर्ती द्वीपभागके भी मानुषोत्तर पर्वतके उस तरफ होना सिद्ध नहीं होगा। इसलिये सामर्थ्यसे दो समुद्रोंमें मनुष्य पाये जाते हैं, यह बात विना कहे ही जानी जाती है।

अब मनुष्योंमें सम्यग्दर्शनके भेदोंका प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयत गुणस्थानोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं ॥ १६४ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम होनेसे यहां पर विशेष कहने योग्य नहीं है।

इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें भी जानना चाहिये ॥ १६५ ॥

इस सूत्रका अर्थ भी सुगम है।

---

१ मु अत्थि सम्माइट्ठी ।

देवादेशप्रतिपादनार्थमाह--

देवा अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठि त्ति ॥ १६६ ॥

एवं जाव उवरिम-गेवेज्ज-विमाण-वासिय-देवा त्ति ॥१६७॥

देवा असंजदसम्माइट्ठि-ट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठी वेदय-सम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठि त्ति ॥ १६८ ॥

सुगमत्वात्सूत्रत्रितये न किञ्चिद्वक्तव्यमस्ति ।

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोइसिय देवा देवीओ च सोधम्मीसाण-कप्पवासिय-देवीओ च असंजदसम्माइट्ठि-ट्ठाणे खइयसम्माइट्ठी णत्थि अवसेसा अत्थि अवसेसियाओ अत्थि ॥ १६९ ॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

किमिति क्षायिकसम्यग्दृष्टयस्तत्र न सन्तीति चेन्न, देवेषु दर्शनमोहक्षपणा-भावात्क्षपितदर्शनमोहकर्मणामपि प्राणिनां भवनवास्यादिष्वधमदेवेषु सर्वदेवीषु चोत्पत्तेरभावाच्च । शेषसम्यक्त्वद्वयस्य तत्र कथं सम्भव इति चेन्न, तत्रोत्पन्नजीवानां पश्चात्तत्पर्यायपरिणतेः सत्त्वात् ।

अब देवोंमें विशेष प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं--

देव मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि होते हैं ॥ १६६ ॥

इसी प्रकार उपरिम उपरिम ग्रैवेयक तकके देव जानना चाहिये ॥ १६७ ॥

देव असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशम-सम्यग्दृष्टि होते हैं ॥ १६८ ॥

पूर्वोक्त तीनों सूत्रोंका अर्थ सुगम होनेसे इनके विषयमें अधिक कुछ भी नहीं कहना है।

भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देव तथा उनकी देवियां और सौधर्म तथा ईशानकल्पवासी देवियां असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि नहीं हैं । शेषके दो सम्यग्दर्शनोंसे युक्त होते हैं और होती हैं ॥ १६९ ॥

शंका--- क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उक्त देवों और देवियोंमें क्यों नहीं होते हैं ?

समाधान--- नहीं, क्योंकि, एक तो वहांपर दर्शनमोहनीयका क्षपण नहीं होता है। दूसरे जिन जीवोंने पूर्व पर्यायमें दर्शनमोहनीयका क्षय कर दिया है उनकी भवनवासी आदि अधम देवोंमें और सभी देवियोंमें उत्पत्ति नहीं होती है ।

शंका--- शेषके दो सम्यग्दर्शनोंका उनमें सद्भाव कैसे संभव है ?

समाधान--- नहीं, क्योंकि, वहांपर उत्पन्न हुए जीवोंके अनन्तर सम्यग्दर्शनरूप पर्याय हो जाती है, इसलिये शेषके दो सम्यग्दर्शनोंका वहांपर सद्भाव पाया जाता है ।

सोधम्मीसाण-प्पहुडि जाव उवरिम-उवरिम-गेवज्ज-विमाण-वासिय-देवा असंजदसम्माइट्ठि-ट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठी वेदग-सम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी ॥ १७० ॥

त्रिविधेन सम्यक्त्वेन सह तत्रोत्पत्तेर्दर्शनात्। तत्रोत्पद्य द्विविधसम्यग्दर्शनोपादानात्तत्र तेषां सत्त्वं सुघटमिति।

शेषदेवानां सम्यग्दर्शनभेदप्रतिपादनार्थमाह--

अणुदिस-अणुत्तर-विजय-वइजयंत-जयंतावराजिद-सव्वट्ठ-सिद्धिविमाण-वासिय-देवा असंजदसम्माइट्ठि-ट्ठाणे अत्थि खइय-सम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी ॥ १७१ ॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

कथं तत्रोपशमसम्यक्त्वस्य सत्त्वमिति चेत्कथं च तत्र तस्यासत्त्वम्? तत्रोत्पन्नेभ्यः क्षायिकक्षायोपशमिकसम्यग्दर्शनेभ्यस्तदनुत्पत्तेः। नापि मिथ्यादृष्टय उपात्तौपशमिकसम्यग्दर्शनाः सन्तस्तत्रोत्पद्यन्ते, तेषां तेन सह मरणाभावात्। न,

---

सौधर्म और ऐशान कल्पसे लेकर उपरिम उपरिम ग्रैवेयक तकके देव असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं ॥१७०

उक्त देवोंमें तीनों ही प्रकारके सम्यग्दर्शनोंके साथ जीवोंकी उत्पत्ति देखी जाती है अथवा, वहांपर उत्पन्न होनेके पश्चात् वेदक और औपशमिक इन दो सम्यग्दर्शनोंका ग्रहण होता है, इसलिये उक्त देवोंमें तीनों सम्यग्दर्शनोंका सद्भाव बन जाता है।

अब शेष देवोंमें सम्यग्दर्शनके भेद बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

नव अनुदिशोंमें और विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित तथा सर्वार्थसिद्धि इन पांच अनुत्तरोंमें रहनेवाले देव असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं ॥ १७१ ॥

शंका— यहांपर उपशम सम्यग्दर्शनका सद्भाव कैसे पाया जाता है?

प्रतिशंका— यहांपर उसका सद्भाव कैसे नहीं पाया जा सकता है?

शंका— वहांपर जो उत्पन्न होते हैं उनके क्षायिक और क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन पाया जाता है, इसलिये उनके उपशम सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है। और मिथ्यादृष्टि जीव उपशम सम्यग्दर्शनको ग्रहण करके वहांपर उत्पन्न नहीं होते हैं, क्योंकि, ऐसे उपशमसम्यग्दृष्टियोंका उपशमसम्यक्त्वके साथ मरण नहीं होता है।

समाधान— नहीं, क्योंकि, उपशम श्रेणीपर चढ़नेवाले और चढ़कर उतरनेवाले जीवोंकी अनुदिश और अनुत्तरोंमें उत्पत्ति होती है, इसलिये वहांपर उपशम सम्यक्त्वके सद्भाव रहनेमें कोई विरोध नहीं आता है।

[1]उपशमश्रेण्यामारूढानामारुह्यावतीर्णानां च तत्रोत्पत्तितस्तत्र तत्सत्त्वाविरोधात्। उपशमश्रेण्यारूढा उपशमसम्यग्दृष्टयो न म्रियन्ते औपशमिकसम्यग्दर्शनोपलक्षितत्वाच्छेषौपशमिकसम्यग्दृष्टय इवेति चेन्न, पश्चात्कृतमिथ्यात्वसम्यक्त्वाभ्यामनुपशमितोपशमितचारित्रमोहाभ्यां च तयोर्वैधर्म्यात्।

सम्यग्दर्शनमुखेन जीवपदार्थमभिधाय समनस्कामनस्कभेदेन जीवपदार्थप्रतिप्रतिपादनार्थमाह--

सण्णियाणुवादेण अत्थि सण्णी असण्णी ॥ १७२ ॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सुगममेतत्सूत्रम्[2]। उक्तं च--

मीमंसदि जो पुव्वं कज्जमकज्जं च तच्चमिदरं च।
सिक्खदि णामेणेदि य सो समणो असमणो य विवरीदो ॥ २२१ ॥

संज्ञिनां गुणस्थानाध्वानप्रतिपादनार्थमाह--

सण्णी मिच्छाइट्ठि-प्पहुडि जाव खीणकसाय-वीयराय-छदुमत्था त्ति[3] ॥ १७३ ॥

शंका-- उपशम श्रेणीपर आरूढ हुए उपशम सम्यग्दृष्टि जीव नहीं मरते हैं, क्योंकि, वे उपशम सम्यग्दर्शनसे युक्त होते हैं। जिस प्रकार अन्य औपशमिक सम्यग्दृष्टियोंका मरण नहीं होता है ?

समाधान-- नहीं, क्योंकि, पश्चात्कृत मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी अपेक्षा तथा अनुपशमित और उपशमित चारित्रमोहनीयकी अपेक्षा साधारण उपशम सम्यग्दृष्टियों और उपशम श्रेणीपर चढ़े हुए सम्यग्दृष्टियोंमें वैधर्म्य है।

इस प्रकार सम्यग्दर्शनके द्वारा जीव पदार्थका कथन करके अब समनस्क और अमनस्क इन दो भेदरूप संज्ञीमार्गणाके द्वारा जीव पदार्थके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं--

संज्ञीमार्गणाके अनुवादसे संज्ञी और असंज्ञी जीव होते हैं ॥ १७२ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है।

जो कार्य करनेसे पूर्व कार्य और अकार्यका, तथा तत्त्व और अतत्त्वका विचार करता है, दूसरोंके द्वारा दी गई शिक्षाओंको सीखता है और नाम लेनेपर आ जाता है वह समनस्क है और जो इससे विपरीत है वह अमनस्क है ॥ २२१ ॥

अब संज्ञी जीवोंके गुणस्थानोंमें प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं--

संज्ञी जीव मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थानतक होते हैं ॥ १७३ ॥

---

१ मु. श्रेण्यारूढा। २ अ. प्रतौ 'उक्तंच' इत्यत आरम्भ गाथेयं नास्ति। मु. प्रतावपि।
३ संज्ञानुवादेन संज्ञिषु द्वादश गुणस्थानानि क्षीणकषायान्तानि। स. सि. १. ८.

समनस्कत्वात्सयोगकेवलिनोऽपि[1] संज्ञिन इति चेन्न, तेषां क्षीणावरणानां मनोऽवष्टम्भबलेन बाह्यार्थग्रहणाभावतस्तदसत्त्वात् । तर्हि भवन्तु केवलिनोऽसंज्ञिन इति चेन्न, साक्षात्कृताशेषपदार्थानामसंज्ञित्वविरोधात् । असंज्ञिनः केवलिनो मनोऽनपेक्ष्य बाह्यार्थग्रहणाद्विकलेन्द्रियवदिति चेद्भवत्येवं यदि मनोऽनपेक्ष्य ज्ञानोत्पत्तिमात्रमाश्रित्यासंज्ञित्वमुच्येत । किं पुनरसंज्ञित्वस्य निबन्धनमिति[2] चेत् ? मनसोऽभावाद् बुद्धयतिशयाभावः ततो नानन्तरोक्तदोष इति । सुगममन्यत्[3] ।

असण्णी एइंदिय-प्पहुडि जाव असण्णि-पंचिंदिया त्ति[4] ॥ १७४ ॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

एतदपि सूत्रं सुगमम्[5] ।

आहारमुखेन जीवप्रतिपादनार्थमाह—

आहाराणुवादेण अत्थि आहारा अणाहारा ॥ १७५ ॥

शंका— मनसहित होनेके कारण सयोगकेवली भी संज्ञी होते हैं ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, आवरण कर्मसे रहित उनके मनके अवलम्बनसे बाह्य अर्थका ग्रहण नहीं पाया जाता है, इसलिये उन्हें संज्ञी नहीं कह सकते ।

शंका— तो केवली असंज्ञी रहे आवें ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, जिन्होंने समस्त पदार्थोंको साक्षात् कर लिया है उनके असंज्ञी होनेमें विरोध आता है ।

शंका— केवली असंज्ञी होते हैं, क्योंकि, वे मनकी अपेक्षाके विना ही विकलेन्द्रिय जीवोंकी तरह बाह्य पदार्थोंको ग्रहण करते हैं ?

समाधान— यदि मनकी अपेक्षा न करके ज्ञानकी उत्पत्तिमात्रका आश्रय करके असंज्ञीपना कहा जाता तो ऐसा होता । परंतु ऐसा नहीं है ।

शंका— तो असंज्ञित्वका क्या कारण है ?

समाधान— मनका अभाव होनेसे बुद्धिके अतिशयका अभाव असंज्ञित्वका कारण है । इसलिये केवली को पूर्वमें दिया गया दोष सम्भव नहीं है । अन्य कथन सुगम है ।

असंज्ञी जीव एकेन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रियपर्यन्त होते हैं ॥ १७४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अब आहारमार्गणाके द्वारा जीवोंके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारक और अनाहारक जीव होते हैं ॥ १७५ ॥

---

१ मु. सयोगिकेवलिनोऽपि । २ मु. माश्रित्यासंज्ञित्वस्य निबन्धनमिति ।
३ मु. सुगममेतत् । ४ असंज्ञिषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम् । स. सि. १. ८.
५ मु. सुगमं सूत्रम् ।

एतदपि सुगमम् ।

[1]आहारिगुणप्रतिपादनार्थमाह---

आहारा एइंदिय-प्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति[2] ॥ १७६ ॥

अत्र कवललेपोष्ममनःकर्माहारान् परित्यज्य नोकर्माहारो ग्राह्यः, अन्यथाहारकालविरहाभ्यां सह विरोधात् ।

अणाहारा चदुसु ट्ठाणेसु विग्गहगइ-समावण्णाणं केवलीणं वा समुग्घाद-गदाणं अजोगिकेवली सिद्धा चेदि ॥१७७॥

एते शरीरप्रायोग्यपुद्गलोपादानरहितत्वादनाहारिण उच्यन्ते ।

इति संत - सुत्त - विवरणं समत्तं ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

यह सूत्र भी सुगम है ।

अब आहारमार्गणामें गुणस्थानोंके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं---

आहारक जीव एकेन्द्रियसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थानतक होते हैं ॥ १७६ ॥

यहांपर आहार शब्दसे कवलाहार, लेपाहार, ऊष्माहार, मानसिकाहार और कर्माहारको छोड़कर नोकर्माहारका ही ग्रहण करना चाहिये । अन्यथा आहारकाल और विरहके साथ विरोध आता है ।

विग्रहगतिको प्राप्त जीवोंके मिथ्यात्व, सासादन और अविरतसम्यग्दृष्टि तथा समुद्घातगत केवलियोंके सयोगिकेवली, इन चार गुणस्थानोंमें रहनेवाले जीव और अयोगिकेवली तथा सिद्ध अनाहारक होते हैं ॥ १७७ ॥

ये जीव शरीरके योग्य पुद्गलोंका ग्रहण नहीं करते हैं, इसलिये अनाहारक होते हैं ।

इस प्रकार सत्प्ररूपणा - सूत्र - विवरण समाप्त हुआ ।

---

१ मु. आहार ।

२ आहारानुवादेन आहारकेषु मिथ्यादृष्टयादीनि सयोगकेवल्यन्तानि । स. सि. १. ८.

३ अनाहारकेषु विग्रहगत्यापन्नेषु त्रीणि गुणस्थानानि, मिथ्यादृष्टिः सासादनसम्यग्दृष्टिरसंयतसम्यग्दृष्टिश्च । समुद्घातगतः सयोगकेवली अयोगकेवली च । स. सि. १. ८.

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी म्हाराज

१ संत-परूवणा-सुत्ताणि

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं इदि ।	८
२	एत्तो इमेसिं चोद्दसण्हं जीवसमासाणं मग्गणट्ठदाए तत्थ इमाणि चोद्दस चेव ट्ठाणाणि णायव्वाणि भवंति ।	९२
३	तं जहा ।	१३३
४	गइ इंदिए काए जोगे वेदे कसाए णाणे संजमे दंसणे लेस्सा भविय सम्मत्त सण्णि आहारए चेदि ।	१३३
५	एदेसिं चेव चोद्दसण्हं जीवसमासाणं परूवणट्ठदाए तत्थ इमाणि अट्ठ अणियोगद्दाराणि णायव्वाणि भवंति।	१५४
६	तं जहा ।	१५६
७	संतपरूवणा दव्वपमाणाणुगमो खेत्ताणुगमो फोसणाणुगमो कालाणुगमो अंतराणुगमो भावाणुगमो अप्पाबहुगाणुगमो चेदि ।	१५६
८	संतपरूवणदाए दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य ।	१६०
९	ओघेण अत्थि मिच्छाइट्ठी ।	१६२
१०	सासणसम्माइट्ठी ।	१६४
११	सम्मामिच्छाइट्ठी ।	१६७
१२	असंजदसम्माइट्ठी ।	१७१
१३	संजदासंजदा ।	१७४
१४	पमत्तसंजदा ।	१७६
१५	अप्पमत्तसंजदा ।	१७९
१६	अपुव्वकरणपविट्ठसुद्धिसंजदेसु अत्थि उवसमा खवा ।	१८०
१७	अणियट्टिबादरसांपराइयपविट्ठसुद्धिसंजदेसु अत्थि उवसमा खवा ।	१८४
१८	सुहुमसांपराइयपविट्ठसुद्धिसंजदेसु अत्थि उवसमा खवा ।	१८८
१९	उवसंतकसायवीयरायछदुमत्था ।	१८९
२०	खीणकसायवीयरायछदुमत्था ।	१९०
२१	सजोगकेवली ।	१९१
२२	अजोगकेवली ।	१९३
२३	सिद्धा चेदि ।	२०१
२४	आदेसेण गदियाणुवादेण अत्थि णिरयगदी तिरिक्खगदी मणुस्सगदी देवगदी सिद्धिगदी चेदि ।	२०२
२५	णेरइया चदुसु ट्ठाणेसु अत्थि मिच्छाइट्ठि सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठि त्ति ।	२०५
२६	तिरिक्खा पंचसु ट्ठाणेसु अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी संजदासंजदा त्ति ।	२०८
२७	मणुस्सा चोद्दससु ट्ठाणेसु अत्थि	

मार्गदर्शक – आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	मिच्छाइट्ठी, सासणसम्माइट्ठी, सम्मामिच्छाइट्ठी, असंजदः–सम्माइट्ठी, संजदासंजदा, पमत्तसंजदा, अप्पमत्तसंजदा, अपुव्वकरणपविट्ठसुद्धिसंजदेसु अत्थि उवसमा खवा, अणियट्टिबादरसांपराइयपविट्ठसुद्धिसंजदेसु अत्थि उवसमा खवा, सुहुमसांपराइयपविट्ठसुद्धिसंजदेसु अत्थि उवसमा खवा, उवसंतकसायवीयरायछदुमत्था, खीणकसायवीयरायछदुमत्था, सजोगिकेवली, अजोगिकेवलि त्ति ।	२११
२८	देवा चदुसु ट्ठाणेसु अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठि त्ति।	२२६
२९	तिरिक्खा सुद्धा एइंदियप्पहुडि जाव असण्णिपंचिंदिया त्ति ।	२२८
३०	तिरिक्खा मिस्सा सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति।	२२९
३१	मणुस्सा मिस्सा मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ।	२३२
३२	तेण परं सुद्धा मणुस्सा ।	२३२
३३	इंदियाणुवादेण अत्थि एइंदिया बीइंदिया तीइंदिया चदुरिंदिया पंचिंदिया अणिंदिया चेदि ।	२३३
३४	एइंदिया दुविहा, बादरा सुहुमा । बादरा दुविहा, पज्जत्ता अपज्जत्ता सुहुमा दुविहा, पज्जत्ता अपज्जत्ता ।	२५१
३५	बीइंदिया दुविहा, पज्जत्ता अपज्जत्ता । तीइंदिया दुविहा, पज्जत्ता अपज्जत्ता । चउरिंदिया दुविहा, पज्जत्ता अपज्जत्ता । पंचिंदिया दुविहा, सण्णी असण्णी । सण्णी दुविहा, पज्जत्ता अपज्जत्ता । असण्णी दुविहा, पज्जत्ता अपज्जत्ता चेदि ।	२६०
३६	एइंदिया बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया असण्णिपंचिंदिया एक्कम्मि चेव मिच्छाइट्ठिट्ठाणे ।	२६३
३७	पंचिंदिया असण्णिपंचिंदियप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ।	२६५
३८	तेण परमणिंदिया इदि ।	२६६
३९	कायाणुवादेण अत्थि पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणप्फइकाइया तसकाइया अकाइया चेदि ।	२६७
४०	पुढविकाइया दुविहा, बादरा सुहुमा। बादरा दुविहा, पज्जत्ता अपज्जत्ता । सुहुमा दुविहा, पज्जत्ता अपज्जत्ता। आउकाइया दुविहा, बादरा सुहुमा। बादरा दुविहा, पज्जत्ता अपज्जत्ता। सुहुमा दुविहा, पज्जत्ता अपज्जत्ता। तेउकाइया दुविहा, बादरा सुहुमा। बादरा दुविहा, पज्जत्ता अपज्जत्ता। सुहुमा दुविहा, पज्जत्ता अपज्जत्ता। वाउकाइया दुविहा, बादरा सुहुमा। बादरा दुविहा, पज्जत्ता अपज्जत्ता। सुहुमा दुविहा, पज्जत्ता अपज्जत्ता। चेदि ।	२६९
४१	वणप्फइकाइया दुविहा, पत्तेयसरीरा साधारणसरीरा । पत्तेयसरीरा दुविहा, पज्जत्ता अपज्जत्ता । साधारणसरीरा दुविहा, बादरा सुहुमा । बादरा दुविहा, पज्जत्ता	

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	अपज्जत्ता। सुहुमा दुविहा, पज्जत्ता अपज्जत्ता चेदि।	२७०
४२	तसकाइया दुविहा, पज्जत्ता अपज्जत्ता।	२७४
४३	पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणप्फइकाइया एक्कम्मि चेय मिच्छाइट्ठिट्ठाणे।	२७६
४४	तसकाइया बीइंदियप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति।	२७७
४५	बादरकाइया बादरेइंदियप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति	२७८
४६	तेण परमकाइया चेदि।	२७९
४७	जोगाणुवादेण अत्थि मणजोगी वचिजोगी कायजोगी चेदि।	२८०
४८	अजोगी चेदि।	२८२
४९	मणजोगी चउव्विहो, सच्चमणजोगो मोसमणजोगो सच्चमोसमणजोगो असच्चमोसमणजोगो चेदि।	२८२
५०	मणजोगो सच्चमणजोगो असच्चमोसमणजोगो सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति।	२८४
५१	मोसमणजोगो सच्चमोसमणजोगो सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीयरायछदुमत्था त्ति।	२८७
५२	वचिजोगो चउव्विहो, सच्चवचिजोगो मोसवचिजोगो सच्चमोसवचिजोगो असच्चमोसवचिजोगो चेदि।	२८८
५३	वचिजोगो असच्चमोसवचिजोगो बीइंदियप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति।	२८९
५४	सच्चवचिजोगो सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति	२९०
५५	मोसवचिजोगो सच्चमोसवचिजोगो सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडिजाव खीणकसायवीयरायछदुमत्था त्ति।	२९१
५६	कायजोगो सत्तविहो, ओरालियकायजोगो ओरालियमिस्सकायजोगो वेउव्वियकायजोगो वेउव्वियमिस्सकायजोगो आहारकायजोगो आहारमिस्सकायजोगो कम्मइयकायजोगो चेदि।	२९१
५७	ओरालियकायजोगो ओरालियमिस्सकायजोगो तिरिक्खमणुस्साणं	२९७
५८	वेउव्वियकायजोगो वेउव्वियमिस्सकायजोगो देवणेरइयाणं।	२९८
५९	आहारकायजोगो आहारमिस्सकायजोगो संजदाणमिड्ढिपत्ताणं।	२९९
६०	कम्मइयकायजोगो विग्गहगइसमावण्णाणं केवलीणं वा समुग्घादगदाणं।	३००
६१	कायजोगो ओरालियकायजोगो ओरालियमिस्सकायजोगो एइंदियप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति।	३०७
६२	वेउव्वियकायजोगो वेउव्वियमिस्सकायजोगो सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति।	३०७
६३	आहरकायजोगो आहारमिस्सकायजोगो एक्कम्हि चेव पमत्तसंजदट्ठाणे	३०८
६४	कम्मइयकायजोगो एइंदियप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति।	३०९
६५	मणजोगो वचिजोगो कायजोगो सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव	

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	सजोगिकेवलि त्ति ।	३१०
६६	वचिजोगो कायजोगो बीइंदिय-प्पहुडि जाव असण्णिपंचिंदिया त्ति ।	३११
६७	कायजोगो एइंदियाणं ।	३११
६८	मणजोगो वचिजोगो पज्जत्ताणं अत्थि, अपज्जत्ताणं णत्थि ।	३१२
६९	कायजोगो पज्जत्ताण वि अत्थि, अपज्जत्ताण वि अत्थि ।	३१२
७०	छ पज्जत्तीओ, छ अपज्जत्तीओ ।	३१३
७१	सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति ।	३१४
७२	पंच पज्जत्तीओ, पंच अपज्जत्तीओ ।	३१५
७३	बीइंदियप्पहुडि जाव असण्णिपंचि-दिया त्ति ।	३१५
७४	चत्तारि पज्जत्तीओ, चत्तारि अपज्जत्तीओ ।	३१६
७५	एइंदियाणं ।	३१६
७६	ओरालियकायजोगो पज्जत्ताणं, ओरालियमिस्सकायजोगो अप-ज्जत्ताणं ।	३१७
७७	वेउव्वियकायजोगो पज्जत्ताणं, वेउव्वियमिस्सकायजोगो अप-ज्जत्ताणं ।	३१९
७८	आहारकायजोगो पज्जत्ताणं आहार-मिस्सकायजोगो अपज्जत्ताणं ।	३१९
७९	णेरइया मिच्छाइट्ठि-असंजदसम्मा-इट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ।	३२१
८०	सासणसम्माइट्ठि – सम्मामिच्छा-इट्ठिट्ठाणे णियमा पज्जत्ता ।	३२२
८१	एवं पढमाए पुढवीए णेरइया ।	३२४
८२	विदियादि जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइया मिच्छाइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ता, सिया अपज्जत्ता ।	३२५
८३	सासणसम्माइट्ठि – सम्मामिच्छा इट्ठि – असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे णियमा पज्जत्ता ।	३२५
८४	तिरिक्खा मिच्छाइट्ठि–सासण-सम्माइट्ठि – असंजदसम्माइट्ठि–ट्ठाणे सिया पज्जत्ता, सिया अपज्जत्ता ।	३२७
८५	सम्मामिच्छाइट्ठि – संजदासंजद-ट्ठाणे णियमा पज्जत्ता ।	३२८
८६	एवं पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियति-रिक्खपज्जत्ता ।	३२९
८७	पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छाइट्ठि – सासणसम्माइट्ठि ट्ठाणे सिया पज्जत्तियाओ, सिया अपज्जत्तियाओ ।	३३०
८८	सम्मामिच्छाइट्ठि – असंजदसम्मा-इट्ठि-संजदासंजदट्ठाणे णियमा पज्जत्तियाओ ।	३३०
८९	मणुस्सा मिच्छाइट्ठि–सासण-सम्माइट्ठि – असंजदसम्माइट्ठि–ट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ।	३३१
९०	सम्मामिच्छाइट्ठि – संजदासजद–संजदट्ठाणे णियमा पज्जत्ता ।	३३१
९१	एवं मणुस्सपज्जत्ता ।	३३३
९२	मणुसिणीसु मिच्छाइट्ठि–सासण–सम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ति–	

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	याओ सिया अपज्जत्तियाओ ।	३३४
९३	सम्मामिच्छाइट्ठि–असंजदसम्मा–इट्ठि-संजदासंजद-संजदट्ठाणे णियमा पज्जत्तियाओ ।	३३४
९४	देवा मिच्छाइट्ठि–सासणसम्मा–इट्ठिअसंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ।	३३६
९५	सम्मामिच्छाइट्ठिट्ठाणे णियमा पज्जत्ता ।	३३७
९६	भवणवासिय–वाणवेंतर-जोइसिय-देवा देवीओ सोधम्मीसाण–कप्प-वासिय-देवीओ च मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता, सिया पज्जत्तियाओ सिया अपज्जत्ति-याओ ।	३३७
९७	सम्मामिच्छाइट्ठि – असंजद–सम्माइट्ठिट्ठाणे णियमा पज्जत्ता णियमा पज्जत्तियाओ ।	३३८
९८	सोधम्मीसाणप्पहुडि जाव उवरिम-उवरिमगेवज्जं ति विमाणवासिय-देवेसु मिच्छाइट्ठि-सासणसम्मा-इट्ठि – असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ।	३३९
९९	सम्मामिच्छाइट्ठिट्ठाणे णियमा पज्जत्ता ।	३४१
१००	अणुदिस-अणुत्तर-विजय-वइजयंत-जयंतावराजित – सव्वट्ठसिद्धि-विमाणवासिय-देवा असंजदसम्मा-इट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ता, सिया अपज्जत्ता ।	३४१
१०१	वेदाणुवादेण अत्थि इत्थिवेदा पुरिसवेदा णवुंसयवेदा अवगदवेदा चेदि ।	३४२
१०२	इत्थिवेदा पुरिसवेदा असण्णि-मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ।	३४४
१०३	णवुंसयवेदा एइंदियप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ।	३४५
१०४	तेण परमवगदवेदा चेदि ।	३४६
१०५	णेरइया चदुसु ट्ठाणेसु सुद्धा णवुंसयवेदा ।	३४७
१०६	तिरिक्खा सुद्धा णवुंसगवेदा एइंदियप्पहुडि जाव चउरिंदिया त्ति ।	३४७
१०७	तिरिक्खा तिवेदा असण्णिपंचि-दियप्पहुडि जाव संजदासजदा त्ति ।	३४८
१०८	मणुस्सा तिवेदा मिच्छाइट्ठि-प्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ।	३४८
१०९	तेण परमवगदवेदा चेदि ।	३४९
११०	देवा चदुसु ट्ठाणेसु दुवेदा, इत्थि-वेदा पुरिसवेदा ।	३४९
१११	कसायाणुवादेण अत्थि कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभ-कसाई अकसाई चेदि ।	३५०
११२	कोधकसाई माणकसाई माय-कसाई एइंदियप्पहुडि जाव अणि-यट्टि त्ति ।	३५३
११३	लोभकसाई एइंदियप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा त्ति ।	३५४
११४	अकसाई चदुसु ट्ठाणेसु अत्थि	

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	उवसंतकसायवीयरायछदुमत्था खीणकसायवीयरायछदुमत्था सजोगिकेवली अजोगिकेवलि त्ति ।	३५४
११५	णाणाणुवादेण अत्थि मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी विभंगणाणी आभिणिबोहियणाणी सुदणाणी ओहिणाणी मणपज्जवणाणी केवलणाणी चेदि ।	३५५
११६	मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी एइंदियप्पहुडि जाव सासणसम्माइट्ठि त्ति ।	३६३
११७	विभंगणाणं सण्णिमिच्छाइट्ठीणं वा सासणसम्माइट्ठीणं ।	३६४
११८	पज्जत्ताणं अत्थि, अपज्जत्ताणं णत्थि ।	३६४
११९	सम्मामिच्छाइट्ठि-ट्ठाणे तिण्णि वि णाणाणि अण्णाणेण मिस्साणि । आभिणिबोहियणाणं मदिअण्णाणेण मिस्सियं, सुदणाणं सुदअण्णाणेण मिस्सियं, ओहिणाणं विभंगणाणेण मिस्सियं, तिण्णि वि णाणाणि अण्णाणेण मिस्साणि वा ।	३६५
१२०	आभिणिबोहियणाणं सुदणाणं ओहिणाणं असंजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ।	३६६
१२१	मणपज्जवणाणी पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ।	३६८
१२२	केवलणाणी तिसु ट्ठाणेसु सजोगकेवली अजोगकेवली सिद्धा चेदि ।	३६९
१२३	संजमाणुवादेण अत्थि संजदा सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा परिहारसुद्धिसंजदा सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा संजदासंजदा असंजदा चेदि ।	३७०
१२४	संजदा पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगकेवलि त्ति ।	३७६
१२५	सामाइयछेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ।	३७६
१२६	परिहारसुद्धिसंजदा दोसु ट्ठाणेसु पमत्तसंजदट्ठाणे अप्पमत्तसंजदट्ठाणे ।	३७७
१२७	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा एक्कम्हि चेव सुहुमसांपराइयसुद्धि संजद-ट्ठाणे ।	३७८
१२८	जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा चदुसु ट्ठाणेसु उवसंतकसायवीयरायछदुमत्था खीणकसायवीयरायछदुमत्था सजोगिकेवली अजोगिकेवलि त्ति ।	३७९
१२९	संजदासंजदा एक्कम्मि चेय संजदासंजद-ट्ठाणे ।	३८०
१३०	असंजदा एइंदियप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति ।	३८०
१३१	दंसणाणुवादेण अत्थि चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओधिदंसणी केवलदंसणी चेदि ।	३८०
१३२	चक्खुदंसणी चउरिंदियप्पहुडि जाव खीणकसायवीयरायछदुमत्था त्ति ।	३८५
१३३	अचक्खुदंसणी एइंदियप्पहुडि जाव खीणकसायवीयरायछदुमत्था त्ति ।	३८५

मार्गदर्शक आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१३४	ओघिदंसणी असंजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीयरायछदुमत्था त्ति ।	३८६
१३५	केवलदंसणी तिसु ट्ठाणेसु सजोगिकेवली अजोगिकेवली सिद्धा चेदि ।	३८७
१३६	लेस्साणुवादेण अत्थि किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउलेस्सिया तेउलेस्सिया पम्मलेस्सिया सुक्कलेस्सिया अलेस्सिया चेदि ।	३८८
१३७	किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउलेस्सिया एइंदियप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति ।	३९२
१३८	तेउलेस्सिया पम्मलेस्सिया सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति ।	३९३
१३९	सुक्कलेस्सिया सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ।	३९३
१४०	तेण परमलेस्सिया ।	३९४
१४१	भवियाणुवादेण अत्थि भवसिद्धिया अभवसिद्धिया	३९४
१४२	भवसिद्धिया एइंदियप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ।	३९६
१४३	अभवसिद्धिया एइंदियप्पहुडि जाव सण्णि मिच्छाइट्ठी त्ति ।	३९६
१४४	सम्मत्ताणुवादेण अत्थि सम्माइट्ठी खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी मिच्छाइट्ठी चेदि ।	३९७
१४५	सम्माइट्ठी खइयसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठीप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति	३९८
१४६	वेदगसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति ।	३९९
१४७	उवसमसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीयरायछदुमत्था त्ति ।	४००
१४८	सासणसम्माइट्ठि एक्कम्मि चेव सासणसम्माइट्ठि-ट्ठाणे ।	४००
१४९	सम्मामिच्छाइट्ठि एक्कम्मि चेव सम्मामिच्छाइट्ठि-ट्ठाणे ।	४०१
१५०	मिच्छाइट्ठी एइंदियप्पहुडि जाव सण्णिमिच्छाइट्ठी त्ति ।	४०१
१५१	णेरइया अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठि त्ति ।	४०१
१५२	एवं जाव सत्तसु पुढवीसु	४०२
१५३	णेरइया असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी चेदि ।	४०३
१५४	एवं पढमाए पुढवीए णेरइआ ।	४०३
१५५	विदियादि जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइया असंजदसम्माइटठिट्ठाणे खइयसम्माइट्ठी णत्थि अवसेसा अत्थि ।	४०३
१५६	तिरिक्खा अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठि संजदासंजदा त्ति ।	४०४

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१५७	एवं जाव सव्वदीवसमुद्देसु ।	४०४
१५८	तिरिक्खा असंजदसम्माइट्ठि-ट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी उवसम-सम्माइट्ठी ।	४०४
१५९	तिरिक्खा संजदासंजदट्ठाणे खइयसम्माइट्ठी णत्थि, अवसेसा अत्थि ।	४०५
१६०	एवं पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदिय-तिरिक्खपज्जत्ता ।	४०५
१६१	पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु असं-जदसम्माइट्ठि-संजदासंजदट्ठाणे खइयसम्माइट्ठी णत्थि, अवसेसा अत्थि ।	४०५
१६२	मणुस्सा अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छा-इट्ठी असंजदसम्माइट्ठी संजदा-संजदा संजदा त्ति ।	४०६
१६३	एवमड्ढाइज्जदीवसमुद्देसु ।	४०६
१६४	मणुसा असंजदसम्माइट्ठि संजदा-संजद-संजदट्ठाणे अत्थि खइय-सम्माइट्ठी वेदयसम्माइट्ठी उव-समसम्माइट्ठी ।	४०७
१६५	एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु ।	४०७
१६६	देवा अत्थि मिच्छाइट्ठी सासण-सम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठि त्ति ।	४०८
१६७	एवं जाव उवरिमउवरिमगेवेज्ज-विमाणवासियदेवा त्ति ।	४०८
१६८	देवा असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठि वेदय-सम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठि त्ति ।	४०८
१६९	भवणवासियवाणवेंतरजोइसिय-देवा देवीओ च, सोधम्मीसाण-कप्पवासियदेवीओ च असंजद-सम्माइट्ठिट्ठाणे खइयसम्मा-इट्ठी णत्थि, अवसेसा अत्थि, अव-सेसियाओ अत्थि ।	४०८
१७०	सोधम्मीसाणप्पहुडि जाव उव-रिमउवरिम – गेवज्जविमाणवा-सियदेवा असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्मा-इट्ठी उवसमसम्माइट्ठी ।	४०९
१७१	अणुदिसअणुत्तरविजयवइजयं-तजयंतावराजिदसव्वट्ठसिद्धि-विमाणवासियदेवा असंजदसम्मा-इट्ठिट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्टी उवसमसम्मा-इट्ठी ।	४०९
१७२	सण्णियाणुवादेण अत्थि सण्णी असण्णी ।	४१०
१७३	सण्णी मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीयरायछदुमत्था त्ति ।	४१०
१७४	असण्णी एइंदियप्पहुडि जाव असण्णिपंचिंदिया त्ति ।	४११
१७५	आहाराणुवादेण अत्थि आहारा अणाहारा ।	४११
१७६	आहारा एइंदियप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ।	४१२
१७७	अणाहारा चदुसु ट्ठाणेसु विग्गह-गइसमावण्णाणं केवलीणं वा समुग्घादगदाणं अजोगिकेवली सिद्धा चेदि ।	४१२

मार्गदर्शक -- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

२ अवतरण-गाथा-सूची

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

क्रम संख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहां
	अ		
१२७	अट्ठविहकम्मविजुदा	२०१	गो. जी. ६८
७६	अट्ठासी-अहियारेसु	११३	
२७	अणवज्जा कयकज्जा	४९	
५१	अण्णाणतिमिरहरणं	६०	
१००	अणियोगो य णियोगो	१५५	आ. नि. १२५
१९०	अणुलोभं वेदंतो	३७५	गो. जी. ४७४
१८३	अत्थादो अत्थंतर	३६१	गो. जी. ३१५
१४८	अत्थि अणंता जीवा	२७३	गो. जी. १९७ मूलाचार १२०३
१०२	अत्थित्तं पुण संतं	१५९	
४६	अदिसयमादसमुत्थं	५९	प्रवच. १. १३
१७८	अप्पपरोभयबाधण	३५३	गो. जी. २८९
८६	अप्पप्पवुत्तिसंचिद	१४०	
१८२	अभिमुहणियमिय	३६१	गो. जी. ३०६
१५	अवगयणिवारणट्ठं	३२	
१८४	अवहीयदि त्ति ओही	३६१	गो. जी. ३७०
४२	अष्टसहस्रमहीपति	५९	ति. प. १, ४७
३६	अष्टादशसंख्यानां	५८	ति. प. १, ४२
१२५	असहायणाणदंसण	१९३	गो. जी. ६४
८५	अहमिंदा जह देवा	१३८	गो. जी. १६४
	आ		
७५	आक्षेपणीं तत्त्ववि	१०७	
१९८	आदा णाणपमाणं	३८८	प्रवच. १, २३
२०	आदिम्हि भद्दवयणं	४१	ति. प. १, २९ समान
१९	आदीवसाणमज्झे	४१	
२२	आदौ मध्येऽवसाने	४२	आ. प.
१८०	आभीयमासुरक्खा	३६०	गो. जी. ३०४
१६४	आहरदि अणेण मुणी	२९६	गो. जी. २३९
९८	आहरदि सरीराणं	१५३	गो. जी. ६६५
१६५	आहारयमुत्तत्थं	२९६	गो. जी. २४०
	इ		
५५	इम्मिसे वसप्पिणीए	६३	ति. प. १, ६८ (समान)
१५१	इंगाल जाल अच्ची	२७५	मूलाचा. २११ आ. चा. नि. ११८
	उ		
३	उच्चारियमत्थपदं	११	जयध. अ. ३०
८	उप्पज्जंति वियंति य	१४	स. त. १, ११
६०	उप्पण्णम्हि अणंते	६५	ति. प. १, ७४ (शब्दभेद)
१९१	उवसंते खीणे वा	३७५	गो. जी. ४७५
	ऋ		
५३	ऋषिगिरिरैन्द्राशायां	६३	जयध. अ. ९
	ए		
१४२	एइंदियस्स फुसणं	२६१	गो. जी. १६७
११९	एक्कम्हि कालसमए	१८७	गो. जी. ५६
७२	एक्को चेव महप्पो	१०१	पञ्चा. ७७
११७	एदम्हि गुणट्ठाणे	१८४	गो. जी. ५१
१४७	एयणिगोदसरीरे	२७२	गो. जी. १९६ मूलाचार १२०४

क्रम संख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहां
२१०	एयणिगोदसरीरे	३९६	मूलाचार १२०४
१९९	एयदवियम्मि जे	३८८	गो. जी. ५८२ स. त. १३३
६५	एस करेमि य पणमं	७४	मूलाचा. १०५ (अर्धसमता)
	ओ		
१६१	ओरालियमुत्तत्थं	२९३	गो. जी. २३१
१५०	ओसा य हिमो धूम	२७५	मूलाचा. २१० आ. चा. नि. १०८
	क		
७०	कधं चरे कधं चिट्ठे	१००	मूलाचा. १०१२ दशवं ४, ७
१६६	कम्मेव च कम्मभवं	२९७	गो. जी. २४१
१७३	कारिसतणिट्ठिवाग	३४४	गो. जी. २७५
१०३	कालो ट्ठिदि-अवधरणं	१६०	
२०९	किण्हादिलेस्सरहिदा	३९२	गो. जी. ५५६
१७७	किमिरायचक्कतणु	३५२	गो. जी. २८७
१८	किं कस्स केण कत्थ	३५	मूलाचा. ७०५
१३६	कुक्खिकिमिसिप्पि	२४२	
१३७	कुंथुपिपीलिकम	२४५	
१२४	केवलणाणदिवायर	१९२	गो. जी. ६३
	ख		
५९	खीणे दंसणमोहे	६५	जयध. अ. ८
२१३	खीणे दंसणमोहे	३९७	जयध. अ. ८
	ग		
८४	गइकम्मविणिव्वत्ता	१३६	
३८	गणरायमच्चतलवर	५८	ति. म. १, ४४
६६	गयगवलसजलजल	७४	
६१	गोत्तेण गोदमो	६६	
	च		
१९५	चक्खूण जं पयास	३८४	गो. जी. ४८४
१६९	चत्तारि वि छेत्ताइं	३२८	गो. जी. ६५३ गो. क. ३३४
[illegible]	चागी भद्दो चोक्खो	३९२	गो. जी. ५१६
७९	चारणवंसो तह पंच	११३	
३२	चोद्दसपुव्वमहोयहिं	५१	
२००	चंडो ण मुयदि वेरं	३९०	गो. जी. ५०९
१८५	चितियमचितियं व	३६२	गो. जी. ४३८
	छ		
७३	छक्कावक्कमजुत्तो	१०१	पञ्चा. ७८
३५	छद्दव्वणवपयत्थे	५६	ति. प. १, ३४ (शब्दभेद)
९६	छप्पंचणवविहाणं	१५३	गो. जी. ५६१
२१२	"	३९७	"
१६७	छम्मासाउवसेसे	३०५	मूलाचार २१०५ (शब्द-भेद). वसु. श्रा. ५३०
१३३	छसु हेट्ठिमासु पुढ	२१०	
१७०	छादेदि सयं दोसे	३४३	गो. जी. २७४
१८८	छेत्तूण य परियायं	३७४	गो. जी. ४७१
	ज		
१४६	जत्थेक्कु मरइ	२७२	गो. जी. १९३
१४	जत्थ बहुं जाणिज्जा	३१	अनु. द्वा. १, ६ आचारा. नि. ४
७१	जदं चरे चिट्ठे	१००	मूलाचा. १०१३ दशवं. ४, ८,

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

क्रम संख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहां
१३४	जवणालिया मसूरी	२३७	मूलाचा. १०९१
३४	जस्स तिए धम्मवहं	५५	दशवै. ९ १३
१४४	जह कंचणमग्गिगयं	२६९	गो. जी. २०३
८७	जह भारवहो पुरिसो	१४०	गो. जी. २०२
१३२	जाइजरा मरणभया	२०५	गो. जी. १५२
२०६	जाणइ कज्जमकज्जं	३९१	गो. जी. ५१५
९१	जाणइ तिकालसहिए	१४५	गो. जी. २९९
१३५	जाणदि पस्सदि	२४१	
६७	जावदिया वयणवहा	८१	गो. क. ८९४ स. त. १, ४७
१०५	"	१६३	"
८३	जाहि व जासु व	१३३	गो. जी. १४१
५०	जियमोहिंधणजलणो	६०	
८१	जीवो कत्ता य वत्ता	११९	गो. जी. जी., प्र. टी., ३३६
१९४	जीवा चोद्दसभेया	३७५	गो. जी. ४७८
१६८	जेसिं आउसमाइं	३०६	मूलारा. २१०६.
१५५	जेसिं ण संति जोगा	२८२	गो. जी. २४३
१०४	जेहि दु लक्खिज्जंते	१६२	गो. जी. ८
१५९	जो णेव सच्चमोसो	२८८	गो. जी. २२१
११२	जो तसबहाउविरओ	१७६	गो. जी. ३१
९३	जं सामण्णं गहणं	१५०	गो. जी. ४८२ द्रव्यसं. ४३
११	ज्ञानं प्रमाणमित्याहुः	१७	लघीय. ६, २
	ण		
२०८	ण उ कुणइ पक्ख	३९२	गो. जी. ५१७
११५	णट्ठासेसपमाओ	१८०	गो. जी. ४६
६८	णत्थि णयेहि विहूणं	९२	आ. नि. ६६१
४	णयदित्ति णयो	१२	
२०४	ण य पत्तियइ परं सो	३९१	गो. जी. ५१३

क्रम संख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहां
२१७	ण य मिच्छत्तं पत्तो	४०१	गो. जी. ६५४
१५७	ण य सच्चमोसजुत्तो	२८४	गो. जी. २१९
१२८	ण रमंति जदो णिच्चं	२०३	गो. जी. १४७
८०	णवमो य इक्खयाणं	११३	
१४०	ण वि इंदियकरण	२५१	गो. जी. १७४
२१९	ण वि जायइ	४०१	
९	णामं ठवणा दविए	१६	स. त. १, ६,
२३	णिद्दड्ढमोहतरुणो	४६	
२०२	णिद्दावंचणबहुलो	३९१	गो. जी. ५११
१२३	णिस्सेसखीणमोहो	१९१	गो. जी. ६२
२६	णिहयविविहट्ठकम्मा	४९	
१७२	णेवित्थी णेव पुमं	३४४	गो. जी. २७५
१११	णो इंदिएसु विरदो	१७४	गो. जी. २९
	त		
४९	तत्तो चेव सुहाइं	६०	
	तदियो य णियइ	११३	
६९	तम्हा अहिगय सुत्तेण	९२	स. त. ३, ६४-६५
२२०	तिण्णि जणाएक्केक्कं	४०१	
११८	तारिसपरिणामट्ठिय	१८४	गो. जी. ५४
४५	तित्थयरगणहरत्तं	५९	
५	तित्थयरवयणसंगह	१२	स. त. १, ३
२५	तिरयणतिसूल	४६	
१२९	तिरियंति कुडिल	२०३	गो. जी. १४८
६४	तिविहा य आणुपुव्वी	७३	
१०७	तं मिच्छत्तं जहमस	१६४	
	द		
२४	दलियमयणप्पयावा	४६	
६	दव्वट्ठियणयपयई	१२	स. त. १, ४
१५८	दसविह-सच्चे वयणे	२८८	गो. जी, २२०
१०९	दहिगुडमिव वामिस्सं	१७१	गो. जी. २२

क्रम संख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहां
५८	दाणे लाभे भोगे	६५	वसु. श्रा. ५२७
१३१	दिव्वंति जदो णिच्चं	२०४	गो. जी. १५१.
४१	द्विसहस्रराजनाथो	५८	ति. प. १, ४६
			(प्राकृतरूप).
३०	देसकुलजाइसुद्धो	५०	वसु. श्रा. ३८८
			(प्रथमचरण.)
२१५	दंसणमोहुदयादो	३९८	गो, जी. ६४९
२१६	दंसणमोहुवसमदो	३९८	गो. जी. ६५०
७४	दंसणवदसामाइय	१०३	गो. जी. ४७७
			वसु. श्रा. ४
			वा. अ. ६९
१९३	"	" ३७५	" "
	ध		
६३	धवगारवपडिबद्धो	६९	
५४	धणुराकारश्छिन्नो	६३	जयध. अ. ९
	प		
७८	पढमो अरहंताणं	११३	
१९६	परमाणु-आदियाइं	३८४	गो. जी. ४८५
२९	पवयणजलहिजलो	५०	
१७	पापं मलमिति प्रोक्त	३५	ति. प. १, १७
			(प्राकृतरूप)
१४९	पुढवी य सक्करा	२७४	मूलाचा. २०६
			आचा. नि. ७३
१७१	पुरुगुणभोगे सेदे	३४३	गो. जी. २७३
१६०	पुरुमहमुदारुराल	२९३	गो. जी. २३०
१२१	पुव्वापुव्वफद्दय	१८९	
३९	पूतनाङ्गवण्डनायक	५८	
१९२	पंचतिचउव्विहेहिं	३७४	गो. जी. ४७६
१८९	पंचसमिदो तिगुत्तो	३७४	गो. जी. ४७२
५२	पंचसेलपुरे रम्मे	६२	जयध. अ. ९
४०	पञ्चशतनरपतीना	५८	ति. प. १, ४५
			(प्राकृतरूप)

क्रम संख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहां
१०	प्रमाणनयनिक्षेपं	१७	ति. प. १, ८२
			वि. भा. २७६४
			(प्राकृतरूप)
			न. च. पृ. ९६
	ब		
१९७	बहुविहबहुप्पयारा	३८४	गो. जी. ४८६
७७	बारसविहं पुराणं	११३	
१४१	बाहिरपाणेहि जहा	२५९	गो. जी. १२९
	भ		
२११	भविया सिद्धि जेसिं	३९६	गो. जी. ५५७
४७	भावियसिद्धंताणं	६०	
११६	भिण्णसमयट्ठिएहि दु	१८४	गो. जी. ५२
	म		
१३८	मक्कडयभमरमहु	२४७	
१३०	मण्णंति जदो णिच्चं	२०४	गो. जी. १४९
८८	मणसा वचसा काए	१४१	स्था. सू. पृ. १०१
२०५	मरणं पत्थेइ रणे	३९१	गो. जी. ५१४
	महावीरेणत्थो कहि	६२	
२८	माणुससंठाणा वि हु	४९	
१०६	मिच्छत्तं वेयंतो	१६३	गो. जी. १७
१५३	मूलग्गपोरबीया	२७५	गो. जी. १८६
			मूलाचा. २१३
७	मूलणिमेणं पज्जव	१३	स. त. १, ५
४८	मेरुव्व णिप्पकंपं	६०	
१	मंगलणिमित्तहेऊ	८	पञ्चा. ज. से. टी.
२०१	मंदो बुद्धिविहीणो	३९०	गो. जी. ५१०
१६	मङ्गशब्दोऽयमुद्दिष्टः	३४	ति. प. १, १६
			(प्राकृतरूप)
२०३	रूसदि णिंददि अण्णे	३९१	गो. जी. ५१२

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

क्रम संख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहां
	ल		
९४	लिप्पदि अप्पीकीर	१५१	गो. जी. ४८९
	व		
११३	वत्तावत्तपमाए	१७९	गो. जी. ३३
२१४	वयणेहि वि हेऊहि	३९७	गो. जी. ६४७
९२	वयसमिइकसायाणं	१४६	गो. जी. ४६४
१५२	वाउब्भामो उक्कलि	२७५	मूलाचा. २१२ आचा. नि. १६६ (अर्थसमता)
५६	वासस्स पढममासे	६४	ति. प. १, ६९ (शब्दभेद)
११४	विकहा तहा कसाया	१७९	गो. जी. ३४
९९	विग्गहगइमावण्णा	१५४	गो. जी. ६६६
२१	विघ्नाः प्रणश्यन्ति	४२	ति. प. १, ३० (प्राकृतरूप)
१८१	विवरीयमोहिणाणं	३६१	गो. जी. ३०५
१६२	विविहगुणइड्ढिजुत्तं	२९३	गो. जी. २३२
१७९	विसजंतकूडपंजर	३६०	गो. जी. ३०३
१२	विसवेयणरत्तक्खय	२४	गो. क. ५७.
१५४	विहतिहचउहि	२७६	गो. जी. १९८
१६३	वेउव्वियमुत्तत्थं	२९४	गो. जी. २३४
८९	वेदस्सुदीरणाए	१४२	
१७६	वेलुवमूलोरब्भय	३५२	गो. जी. २८६
	श		
२	शब्दात्पदप्रसिद्धिः	१०	प्र. शाकटा. सिद्ध हैम.
	ष		
४३	षट्खण्डभरतनाथं	५९	ति. प. १, ४५ (प्राकृतरूप)
	स		
१२२	सकयाजलं हलं वा	१९०	गो. जी. ६१
४४	सकलभुवनैकनाथ	५९	ति. प. १, ४५ (प्राकृतरूप)
८२	सत्ता जंतू य माणी	१२०	गो. जी., जी. प्र. टी. ३६६
२१८	सद्दहणासद्दहणं	४०१	गो. जी. ६५५
१५६	सब्भावो सच्चमणो	२८३	गो. जी. २१९
१०८	सम्मत्तरयणपव्वय	१६७	गो. जी. २०
११०	सम्माइट्ठी जीवो	१६७	गो. जी. २७
१३९	संसेदिमसम्मु	२४९	आचा. सू. ४९ (सूत्ररूप)
५७	सावणबहुलपडिवदे	६४	ति. प. १, ७०
१४५	साहारणमाहारो	२७२	गो. जी. १९२
९७	सिक्खाकिरियुव	१५३	गो. जी. ६६१
९५	सिद्धत्तणस्स जोग्गा	१५१	गो. जी. ५५८
१३	सिद्धत्थपुण्णकुंभो	२८	पञ्चा. टी.
१७४	सिलपुढविभेदधूली	३५२	गो. जी. २८४
३३	सीहगयवसहमिय	५२	
१४३	सुत्तादो तं सम्मं	२६४	गो. जी. २९
९०	सुहदुक्खसुबहु	१४३	गो. जी. २८२
१०१	सूई मुद्दा पडिहो	१५५	
६२	सेलघणभग्गघडअहि	६९	बृ. क. सू. ३३४ आ. नि. १३९ (शब्दभेद)
१७५	सेलट्ठिकट्ठवेत्तं	३५२	गो. जी. २८५
१२६	सेलेसिं संपत्तो	२००	गो. जी. ६५
३१	संगहणिग्गहकुसलो	५०	मूलाचा. १५८ (शब्दभेद)
१८७	संगहियसयलसंजम	३७४	गो. जी. ४७०
१८६	संपुण्णं तु समग्गं	३६२	गो. जी. ४६०
	ह		
३७	हयहत्थिरहाणहिवा	५८	ति. प. १, ४३ (शब्दभेद)
१२०	होंति अणियट्टिणो ते	१८७	गो. जी. ५७

३ ऐतिहासिक नाम सूची

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

नाम	पृष्ठ
अ	
अपराजित	६७
अभय (कुमार)	१०५
अयस्थूण	१०९
अश्वलायन	१०८
अष्टपुत्र	१०४
आ	
आनन्द	१०५
इ	
इन्द्रभूति	६५, ६६
उ	
उलूक	१०९
ऋ	
ऋषिदास	१०५
ए	
एलापुत्र	१०९
ऐ	
ऐतिकायन	१०९
ऐन्द्रदत्त	१०९
औ	
औपमन्यव	१०९
क	
कण्व	१०९
कपिल	१०८
काणेविद्धि	१०८
कार्तिकेय	१०५
किष्किविल	१०४
कुथुमि	१०९
कौत्कल	१०८
कौशिक	१०८
कंसाचार्य	६७
क्षत्रिय	६७
ग	
गार्ग्य	१०९
गोवर्धन	६७
गौतम, देव, स्वामी	६५, ६६, ६७, ७३
गंगदेव	६७
च	
चिलातपुत्र	१०५
ज	
जतुकर्ण	१०९
जम्बूस्वामी	६६, ६७
जयपाल	६७
जयाचार्य	६७
जिनपालित	६१, ७२
जैमिनि	१०९
ध	
धन्य (कुमार)	१०५
धरसेन (भट्टारक)	७, ६८, ६९, ७१
धर्मसेन	६७
ध्रुवसेन	६७
धृतिषेण	६७
न	
नक्षत्राचार्य	६७
नन्दन	१०५
नन्दिमित्र	६७
नमि	१०४
नागाचार्य	६७
नारायण	१०९
प	
पाराशर	१०९
पालम्ब	१०४
पांडुस्वामी	६७
पुष्पदन्त	८, ९, ७२, ७३, १३१, १९३, २२८
पैप्पलाद	१०९
प्रौष्ठिल	६७
ब	
बादरायण	१०९
बुद्धिल	६७
भ	
भद्रबाहु	६७
भूतबलि	७, ७२, ७३, २२७
म	
मतङ्ग	१०४
मरीचि	१०९
महावीर	६२, ६५
माठर	१०९
माध्यंदिन	१०९
मांद्वपिक	१०८
मुण्ड	१०८
मोद	१०९
मौद्गलायन	१०९

	पृष्ठ
य	
यतिवृषभ	३०४
यमलीक	१०४
यशोबाहु	६७
यशोभद्र	६७
र	
रामपुत्र	१०४
रोमश	१०८
रोमहर्षणी	१०९
ल	
लोहार्य	६६, ६७
व	
वर्धमान	६५, ७३, १०४
वलीक	१०४
वल्कल	१०९
वशिष्ठ	१०९
वसु	१०९
वाद्बलि	१०९
वाल्मीकि	१०९
वारिषेण	१०५
विजयाचार्य	६७
विशाखाचार्य	६७
विष्णु	६७
व्याघ्रभूति	१०९
व्यास	१०९
श	
शाकल्य	१०९
शालिभद्र	१०५
शिवमाता	७४
स	
सत्यदत्त	१०९
सात्यमुग्रि	१०९
सिद्धार्थदेव	६७
सुदर्शन	१०४
सुनक्षत्र	१०५
सुभद्र	६७
स्वेष्टकृत्	१०९
सोमिल	१०४
ह	
हरिश्मश्रु	१०८
हारित	१०८

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

४ भौगोलिक नाम सूची

अ	
अंकलेश्वर	७२
अंध्र, आंध्र विषय	६८, ७८
ऋ	
ऋषिगिरि	६३
औ	
औदीच्य	७९
ग	
गङ्गा	९३
गिरिनगर	६८
गौड	७८
च	
चन्द्रगुफा	६८
छिन्न (गिरि)	६३
द	
दक्षिणापथ	६८
दाक्षिणात्य	७९
द्रमिलदेश	७२, ७८
प	
पंचशैलपुर	६२
पांडुगिरि	६३
म	
महिमा	७७
माथुर	७९
व	
वनवास विषय	७२
वालभ	७९
विपुलगिरि	६२, ६३
वेण्यातट	६८
वैभार	६३
स	
सौराष्ट्र	६८
ह	
हिमवान्	९३

५ ग्रन्थ नामोल्लेख

	पृष्ठ
क	
कषाय प्राभृत	२१८, २२२
कालसूत्र	१४३
त	
तत्वार्थ[illegible]	[illegible]
तत्वार्थसूत्र	२४१, २६१
व	
वर्गणासूत्र	२९२
[illegible]	२५३
स	
सत्कर्मप्राभृत	२१८, २२२
सन्मतिसूत्र	१६

प्रकाशक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

६ वंश नामोल्लेख

	पृष्ठ
इ	
अर्हत्	११३
इक्ष्वाकु	११३
क	
काश्यप	११३
कुरु	११३
च	
चक्रवर्त्ति	११३
चारण	११३
ज	
जिनवंश	११३
न	
नाथवंश	११३
प	
प्रज्ञाश्रमण	११३
र	
राजवंश	११३
व	
वादि	११३
वासुदेव	११३
विद्याधर	११३
ह	
हरि	७४, ११३

७ प्रतियोंके पाठ-भेद

१ अ–अमरावतीकी प्रति; आ–आराकी; क–कारंजाकी; स–सहारनपूरकी।

२ „ चिन्होंसे तात्पर्य यहां उपरके शब्दोंसे नहीं, किन्तु उसी पंक्तिके बाई ओरके शब्दोंसे समझना चाहिये।

३. इन प्रतियोंके पाठभेदोंकी दिशा बतलानेके लिये यहां केवल थोड़ेसे पाठभेद दिये जाते हैं। यथार्थतः ऐसे पाठभेद हैं बहुत ही अधिक।

पृष्ठ	पंक्ति	अ	आ	क	स	मुद्रित
१	१	ॐनमः सिद्धेभ्यः	,,	,,	ॐ नमः सिद्धभ्यः।	
		ॐ गणधरपरमे-	अथ श्री धवल			
		ष्ठिने नमः।	प्रारम्भः।			
		ॐ द्वादशाङ्गाय				
		नमः। निर्विघ्न				
		मस्तु				
१	२	केवलि-	,,	केवल-	केवल-	केवल-
१	२	णमहं	,,	,,	णमह	णमह
६	१	-अंगागिज्जा	-अङ्गङ्गिज्जा	,,	,,	-अंगगिज्झा
,,	,,	-मल-मूल-	-मल-गूढ-	-मल-मूल-	-मल-मूढ-	-मल-मूढ-
८	२	वक्खाणिउ	,,	,,	वक्खाणउ	वक्खाणउ
९	१	परूवणयं	,,	,,	परूवयं ण	परूवयं ? ण,
९	२	तालफलं व	,,	,,	तालफलं व	तालपलंब
		सुत्तव			सुत्तं व	सुत्तं व
१०	२	सयलच्छवच्छाणं	,,	,,	सयलत्थवत्थूणं	,,
		सच्छाणं	,,	,,	णं सद्दाणं	
१२	३	-वायरणे	,,	,,	,,	-वायरणी
१३	१	-णिमोणं	-णिमाणं	-णिमोणं		-णिमेणं
१३	२	सद्धादीया	सद्धाइदिया	सद्धादीया	,,	सद्दादीया
,,	,,	साहुपसाहु	,,	,,	,,	साहुपसाहा
१६	४	-लक्खणं खइणो	,,	,,	,,	-लक्खण-क्खइणो
१६	८	णियतव्वाचय-	,,	,,	,,	णियतव्याचय

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

पृष्ठ	पंक्ति	अ	आ	क	स	मुद्रित
१९	१	वज्जत्थ-	,,	,,	,,	वच्चत्थ-
१९	२	जीवो वा जीवो वा अजीवो वा जीवो च अजी- वो च अजीवो च अजीवा च जीवा च जीवा च अजो- वो च जीवा चेदि	जीवो वा जीवो वा अजीवो वा अजीवो वा जीवो च अजी- वो च अजीवो च जीवो च अ- जीवा च जीवा च अजीवो च जीवा चेदि	,,	,,	जीवो वा, जीवा वा, अजीवो वा, अजीवा वा, जीवो य अजीवो य, जीवा य अजीवो य, जीवो य अजी- वा य, जीवा य अजीवा य.
२०	३	सुभाव-	,,	,,	सब्भाव-	सब्भाव-
२२	२	तस्सत्थ-	,,	,,	तस्सद्द-	तस्सत्थ-
३०	२	अथाष्टारत्न्यादि	,,	,,	अर्धाष्टारत्न्यादि	,,
३१	७	जाणिज्जो	,,	,,	,,	जाणिज्जा
३२	७	विपर्ययोः	,,	,,	,,	विपर्यस्यतोः
३३	५	असौ व्यामोहेन	,,	,,	सोऽव्यामोहेन	,,
३५	५	गच्छति कर्त्ता सिद्धि-	गच्छति कर्त्ता कार्यसिद्धि-	,,	,,	,,
३६	७	सारस्थ स्तम्भ	,,	,,	,,	सारे स्तम्भ
४०	५	नमो जिनानाम्	,,	,,	नमो जिणाणम्	'णमो जिणाणं'
४१	३	कयकाउया	,,	,,	,,	कयकोउय
४२	६	जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण कयदेवदाणमो- क्कारो तं णिबद्ध- मंगलं। जो सुत्त- स्सादी सुत्तकत्ता- रेण णिबद्धो देव दाणमोक्कारो तम णिबद्ध-मंगलं।	,,	,,	,,	जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण णि- ''बद्ध-देवदाण- मोक्कारो तंणि- बद्धमंगलं। जो सुत्तस्सादीए सुत्त-कत्तारेण कय-देवदा णमोकारो तमणि- बद्ध-मंगलं।
४४	४	विनष्टेरा	,,	,,	,,	विनष्टेऽरौ
४७	३	-भूताः शेषात्म-	,,	,,	,,	-भूताशेषात्म-

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

पृष्ठ	पंक्ति	अ	आ	क	स	मुद्रित
४९	५	वज्जसिलत्थ-	वज्जसिलत्थ-	वज्जसिलत्थ-	वज्जसिलत्थ-	वज्जसिलत्थ
		स्सगय-	स्सग्गय-	ब्भग्गय-	स्सग्गय-	ब्भग्गय-
५०	३	संगभग्ग-		भग्गसंग-	संगभग्ग-	संग-भंग-
५३	८	-कार्यत्वाद्भेद-	"	"	"	कार्यत्वाद्भेदः
		सत्स्वेव				सत्स्वेव
५४	४	रत्नैकदेशस्य	रत्नैकदेशस्य	रत्नैक-		रत्नैकदेशस्य
		देशत्वा-	देवत्वा-	देशत्वा-		देवत्वा-
५५	१	संजात-	स जात-	संजात-	संजात-	संजात-
५५	२	गुणिभूततादृैते	"	गुणिभूताद्वैते	"	गुणीभूताद्वैते
५५	३	-शब्दाधिक्य-	"	"	"	-श्रद्धाधिक्य-
५५	४	-स्थापनार्थं	-ख्यापनार्थं	-स्थापनार्थं	-ख्यापनार्थं	-ख्यापनार्थं
६०	६	कम्मं मुप्पज्जइय	कम्मं फुड	कम्मं फुड		कम्मं फुड सिद्ध-
		फुड सिद्धसुहं पि	सिद्धसुहं पि	सिद्धसुहं		सुहं पि पवय-
		वयणादो	पवयणदो	पि वयणदो		णादो ।
६३	३	-श्छिन्नोदा-	"	"	-श्छिन्नो	"
६५	४	खइयाइ ण होंति	"	"	खइयाइं होंति	"
६५	६	दिव्वज्झाणी	"	"	दिव्वज्झुणी	"
६५	१	गोत्तम-गोत्तेण	गोत्तम-गोदेण	गोत्तम-गोदेण		गोदम-गोत्तेण
६६	६	जादोत्ति	"	"		जादेत्ति
६७	५	विदिसेणो		"	धिदिसेणो	"
६८	४	बंधवोच्छेदो	"	"		गंथवोच्छेदो
७४	१०	-वच्छदे	"	"		-वच्छओ
८३	३	यत्थेदं	जत्थेदं	यथेदं		एत्थेदं
८५	३	समनस्य	"	"	"	समस्तस्य
८५	६	नैकगमो नयः	"	"	नैकगमो नैगमः	"
८९	५	संतिष्ठति	संतिष्ठते	"	"	तिष्ठति
		तिष्ठति	तिष्ठति	"		संतिष्ठते
९०	४	-कत्वान्येते	"	"		-कत्वान्नेते
९०	४	भिन्नपदाना-		"	भिन्नपदार्थाना-	भिन्नपदाना-
९१	६	नानार्थं	"	"	नानार्थे	"
९२	४	अत्थोत्थ	"	"	अत्थो व्व	"
९३	४	संख्येयानन्ता-	संख्येयासंख्ये-	संख्येयानन्ता-		संख्येयासंख्येया-
		त्मक-	यानन्तात्मक-	त्मक-		नन्तात्मक-

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

पृष्ठ	पंक्ति	अ				
९४	५	सिद्धं	„	„	सद्ध-	सद्-
९४	६	-विसवायो	„	„		-विसयाओ
९५	६	मुहोण	मणेण	मुणेण	मणेण	„
९५	९	-पुव्वत्तं	-पुव्वुत्त	-पुव्वत्तं	-पुधत्तं	„
१००	२	विहाय-	वियाह्-	विवाह्-	वियाह्-	„
१०४	२	गंधहस्तितत्वार्थभाष्ये	तत्वार्थभाष्ये	„	„	„
१०६	२	सुद्धिमकरेंति	„	„		सुद्धिं करेंती
१०६	३	धावत्ती	„	„		थावंती
१०६	७	उक्तं च भाष्ये	„	„	उक्तं च	„
१०९	४	-मन्यानिक	„	„	-मज्ञानिक-	„
१११	४	पव्वयदवह्-	„	„	पव्वददह्-	„
११९	१	यल्लोकं	„	„		यल्लोके
„	१४	सरीर	„	„		सरीरी
१२०	६	-देसोहि	„	„	-देहेहि	„
१२१	१	सरीरो	„	„		सरीरी
१२४	२	धारणा	„		धारणा	„
१२८	११	भावो	भावादो भावो	भावो		भावो
१२९	२	दोण्णि एक्काणि	„	„	दोण्णि	„
१३१	११	पुत्त-	उत्त-	पुव्वुत्त-	उत्त-	उत्त-
१३४	७	-रीकतत्वा-	„	„		-रीकः तत्वा-
१४२	१	रूढिव्यप-	„	„	रूढिवशा-	„
१४२	४	मेयो	„	„	मेओ	वेओ
१४८	६	तदा भावाणं	„	„	भावाणं	भावाणं
१५२	५	-मुवतता	„	„		-मनुरक्तता
१५४	७		इमान्यष्टौ		इमाणि अट्ठ	„
१५९	१	परूवणा णं	„	„	परूवणा	„
१६५	२	ततोऽसत्येषु	ततो सत्येष-	सत्येष-	ततोऽसनू	„
१६९	४	सतोऽपि	„	„	सतापि	„
१६९	५	-दिवतः	„	„		ततः
१७३	१	अट्ठि-	„	„		लट्ठि-
१७५	५	सहभावो	„	„	सहभुवो	„
१७८	३	कुतः	„	„	क्व तद्	„

मार्गदर्शक : आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

पृष्ठ	पंक्ति	अ	आ	क	स	मुद्रित
१८०	३	-ख्यानानुत्पत्ते	,,	,,	ख्यानोत्पत्तेः	,,
[illegible]	४	[illegible] शमज-	-क्षयोपशमिक	,,		-क्षयोपशमोप- शमज-
१८२	३	-करणनाम-	,,	,,		-करणानाम-
१८२	५	-देशी	,,	,,	-देश-	,,
१८४	१०	-राइय-	-राये	राइय	,,	,,
१८५	६	तासु	,,	,,	तान्	तेषु
१९७	७	-स्यात्पौ-	,,	,,	-स्यापौ-	,,
१९९	९	ज्ञेयसंभवि	,,	,,	ज्ञेयसमवि-	ज्ञेयसम परिवर्तिनः
२००	४	-माक्षिष्ट-	,,	,,		-मैक्षिष्ट-
२०२	९	-स्यापत्यं	,,	,,		यातयति
२०३	६	तत्तु अंचति तदंश्चंति	,,	,,	तदञ्चन्ति	,,
२०६	४	-दृष्टिषु	-दृष्टयादिषु	,,		-दृष्टिषु
२०६	१०	तद्वत्यं	तद्वत्य-	तद्वत्यं	तद्वतां	,,
२११	१०	-मवुत्तमुत्तमुव-	,,	,,		-मवुत्तमुव-
२२१	११	तदो	तदो ण	तत्थ तदो		तदो
२२२	१	आइरियकहि- याणं	आइयारिइ- रियकम्माणं	आइरियाइय- कहियाणं		आइल्लाइरिय- -कहियाणं
२२४	५	अप्पणो	तदो अप्पणो	अप्पणो		,,
२२४	६	गमियमिदं	,,	,,	गमिय	,,
२२९	३	-संयतास्ता-	,,	,,		संयतासंयतास्ता-
२३१	४	-त्वाद्देशा-	,,	,,	-त्वोद्देशा-	-त्वाद्देशा-
२३२	१	-वासंजनना-	,,	,,	-वासञ्जना-	,,
२३४	८	-मान्द्य-	-माद्य-	-मान्द्य-	,,	-मान्ध्य-
२६९	१	किट्टूण	,,	,,	,,	किट्टेण
२७०	१	-शक्त्याविर्भावित वृत्तयः	-शक्त्युपबृंहि- तवृत्तः	-शक्त्याविर्भा- वितवृत्तयः	,,	,,
२७८	७	संप्रतिघातः	,,	,,	,,	सप्रतिघातः
२८१	७	स्यादप्रयत्नो	,,	,,	स्यात् प्रयत्नो	,,
२८३	५	समनस्के	,,	,,	समनस्केषु	,,
२८४	५	सत्सरूप-	,,	,,	तत्स्वरूप-	तत्सत्त्व
२८४	५	-मुत्तरसूत्रद्वयमाह	,,	,,	-मुत्तरसूत्रमाह	मुत्तरसूसद्वयमाह

पृष्ठ	पंक्ति	अ	आ	क	स	मुद्रित
२८४	८	सजोगिकेवलि	अजोगिकेवलि	,,	सजोगिकेवलि	,,
२९१	७	तत्रान्तर्जल्पस्य	तत्रान्तर्जल्पस्य, तत्राप्यनन्तर्जं- ल्पस्य	तत्रान्तर्जं- ल्पस्य	,,	तत्राप्यन्त- र्जल्पस्य
२९४	२	मिस्सकायजोगो	,,	,,		मिस्सको जोगो
२९५	५	पूतं शरीर-	,,	,,	पूर्वं शरीर-	,,
३००	४	ततश्च द्विहेतु-	,,	,,		ततश्चाद्विहेतु-
३०४	३	सर्वघाति-	,,	,,		सर्वाघाति
३०४	१०	चेतुण	,,	,,	चेते	,,
३०७	३	-धारणाभावान्न	धारणान्न	धारणाभावान्न	,,	,,
३०८	१	ऽप्यथा न	,,	,,		ऽन्यथा
३१८	२	वलेनोच्छन्न	,,	,,	वलेनोत्पन्न	,,
३२१	२	प्रवृत्यसूत्र	,,	,,	प्रवृत्तसूत्र	,,
३२१	४	कुतो भवत्	,,	,,	कुतो भवेत्	,,
३२२	५	तत्र तु न	,,	,,	तत्रतन	,,
३२२	७	सन्त्येताभ्यां	,,	,,	सन्ताः ताभ्या	सन्तः एताभ्यां
३२३	८	प्राप्तो यौ-	,,	,,	प्राप्तयौ-	,,
३२६	३	नियमान्न	नियमान	नियमान्न	विद्यमान-	,,
३२८	४	संजदासंजद- ट्ठाणे	संजदासंजद- संजदट्ठाणे	,,		संजदासंजद ट्ठाणे
३२८	१०	महव्वदो सु य ण अहइ दो वा	,,	,,		महव्वदाइं ण लहइ देवा
३३६	६	नन्वनारंभकस्य	,,	,,		न चारम्भकस्य
३३९	७	उवरिम-	उवरिम उवरिम-	,,		उवरिम-उवरिम-
३४०	३	-नुपशान्तास्त-	,,	,,		-नुपशान्तान्त- स्तापाना
३४०	७	तत्रतु न	तत्र तुन	,,		तत्रतन-
३४४	१	पुम्हं	,,	,,	पुमं	,,
३४४	२	समाणा	,,	,,		समाणग
३५९	३	शब्दस्य	,,	,,		शब्दस्य च
३५९	४	·निःसृतानु	,,	,,		अनिःसृतानु
३६०	९	आभेयमासु-	,,	,,		आभियमासु-
३६५	११	नामिश्रणं	,,	,,		न मिश्रणं-

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

पृष्ठ	पंक्ति	अ	आ	क	स	मुद्रित
३६७	१	तदवनि-	,,	,,		तद्भवनि
३६८	२	संयमोद्देश-	,,	,,		संयमः देश-
३६६	१०	संयमसंयत-	संयमसंयतस्य	संय संयत-		संयमासंयमा-
			जघन्यस्य			संयमत-
३६९	१	-तामभविष्यत्	,,	,,		-तामगमिष्यत्
३७१	५	शेषः सामेदं	शेषः समित्रं	,,	शेष रूपमिदं	शेषविशेष रूपमिदं
३७२	१	शुद्धिसंयत	,,	,,		शुद्धिसंयम
३७२	७	सूत्रे	विशिष्टसूत्रे	सूत्रे		,,
३७३	११	वादे	वादे	वादेन		,,
३७५	४	संजमो	संजमो	,,	संजदो	,,
३७७	५	निमग्नात्तानां	निमग्नाग्तानां	निमग्नात्मनां		,,
३७७	३	निबन्धनावेव-	निबन्धनाव-	निबन्धनावेव		निबन्धनाव-
		भवि	भवि			भवि-
३८०	५	गुणस्य गुणस्थान	गुणस्य गुण-	गुणस्थान		गुणस्य गुणस्थान-
		प्रमाणनिरू-	स्थान निरू	प्रमाणनिरू-		प्रमाणनिरू-
३८२	७	नियम	,,	,,		नियमित
३८२	९	न दर्शनस्य	,,	न दर्शनविषय-	तद्दर्शनस्य	तदर्शनस- विषय-
		विषय-			-विषय-	
३८३	६	-रूपद्वय-	-द्वय-	-द्वय		-द्वय-
३८७	१०	ज्ञानदर्शन	,,	,,		ज्ञानाद्दर्शन-
३९०	९	णाणत्थि	,,	,,		-णाणी य
३९१	१	दव्व-	इव्व-	दव्व-		तिव्व-
३९४	१०	-पेक्षया ते	,,	,,		-पि क्षयः
३९५	८	गच्छंतो	,,	,,		गच्छतां
३९६	१	निष्कलंको	,,	,,		निष्कलंका
		भवति				भवन्ति
३९७	६	त्याज्यः	,,	,,		न्याय्यः
४०५	२	तिरिक्ख-	,,	,,		तिरिक्खा
४०६	२	संजदासंजदा	संजदासंजदा	,,		,,
			संजदा			
४०६	३		-मन्यत्	-मेतत्		-मेतत्
४०६	७	-र्थमन्यत:समर्थं	,,	,,	,,	,,
४०७	२	-संजद-	-संजद-संजद-	,,	,,	,,
४०७	५	-पज्जत्ता	,,	,,	,,	-पज्जत्त-

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

विशेष टिप्पण

सूचना—प्रथम संख्यासे पृष्ठ और दूसरीसे पंक्तिका तात्पर्य है।

पृ. पं. 'बारह-अंगग्गिज्झा' में 'गिज्जा' पाठ भी प्रतियोंमें मिलता है। इस गाथासे कुछ
१ १. मिलती जुलती एक गाथा वसुनन्दिश्रावकाचारमें निम्न प्रकारसे पाई जाती है—

बारह-अंगंगी जा दंसण-तिलया चरित्त-वत्थ-हरा
चोद्दस-पुव्वाहरणा ठावेयव्वा य सुयदेवी ॥ ३९१ ॥

३९ १०. 'देंहितो कय' इतना पाठ आराकी प्रतिमें नहीं है, और इस पाठके न होनेसे अर्थका सामञ्जस्य भी ठीक बैठता है, किन्तु पाठ-निश्चय करते समय आराकी प्रति हमारे सामने न होनेसे हम उसे छोड़ नहीं सके और किसी प्रकार अर्थ-संगति बिठलाई गई। पर जान पड़ता है कि अ. और क. प्रतियोंमें वह आगेकी गाथा नं. १९ के '(जिणि-) देंहि तो कय' पाठसे लिपिकारोंके दृष्टि-दोषसे आगया है। ऐसे लिपि-दोष इन सभी प्रतियोंमें अनेक हैं। (देखिये प्रतियोंके पाठ भेद) (टिप्पणदेखिये)

६८ ५. 'महिमाए मिलियाणं' से यह स्पष्ट नहीं होता कि महिमा एक नगरीका नाम था जहां वह मुनि-संमेलन हुआ। इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतारमें भी महिमाका उल्लेख भ्रामक है। यथा, देशेन्द्रदेशनामनि वेणाकतटीपुरे महामहिमासमुदितमुनीन् प्रति ब्रम्हचारिणा प्रापयल्लेखम् ॥ इस पद्यमें 'देशेन्द्रदेश' 'देशान्ध्रदेश' का अशुद्ध रूप ज्ञात होता है। 'महामहिमा-समुदितमुनीन्' का 'महोत्सवनिमित्त सम्मिलित मुनि' भी हो सकता है। प्रस्तुत ग्रंथके पृ. २९ पर 'जिनमहिम-सम्बद्धकालोऽपि मङ्गलं यथा नन्दीश्वरदिवसादिः' में 'महिम' का अर्थ उत्सव होता है। वसुनन्दिश्रावकाचारमें भी 'महिम' शब्द नन्दीश्वर उत्सवके अर्थमें आया है यथा—

विविहं करेइ महिमं नंदीसर-चेइय-गिहेसु ॥ ४०७ ॥

इसके अनुसार 'महिमाए मिलियाणं' का अर्थ 'नन्दीश्वर उत्सवके लिये सम्मिलित' भी हो सकता है। किन्तु पं. जुगलकिशोरजी मुख्तारने अपनी श्रुतावतार कथा (जै. सि. भा. ३, ४) में महिमाको नगरीका नाम अनुमान किया है और उसे सतारा जिलेके महिमानगढ़से अभिन्न होनेका संकेत किया है। इसी अनुसार अनुवादमें उसे नगरीका द्योतक स्वीकार कर लिया गया है। किन्तु है यह प्रश्न अभी भी विचारणीय।

७२ ५. जिणवालियं दट्ठूण पुप्फयंताइरियो वणवासिविसयं गदो। यहां 'दट्ठूण' का अर्थ अनुवादमें 'देखकर' (दृष्ट्वा) किया गया है। किन्तु इसका अर्थ 'देखनेके लिये' (दृष्टुम्) भी हो सकता है। (देखो भूमिका पृ. १९, पुष्पदन्त और जिनपालित)

७२ ९. 'अप्पाउओ त्ति अवगय-जिणवालिदेण' इन्द्रनन्दिने अपने श्रुतावतारमें यह प्रसंग इस प्रकार दिया है 'विज्ञायाल्पायुष्यानल्पमतीन्मानवान् प्रतीत्य ततः' जिसका अर्थ यह होता है कि भूतबलिने मनुष्योंको अल्पायु समझकर सिद्धान्तोंको

पुस्तकारूढ़ करनेका निश्चय किया। पं. जुगलकिशोरजीने इसका अर्थ इस प्रकार किया है 'भूतबलिने....यह मालूम किया कि जिनपालित अल्पायु हैं' (जै. सि. भा. ३, ४)। किन्तु जिनपालितके अल्पायु होनेसे सिद्धान्तके लोप होनेकी आशंकाका कोई कारण नहीं था, किन्तु पुष्पदन्त और भूतबलिमेंसे किसी एकके अल्पायु होनेसे सिद्धान्त-लोपकी आशंका हो सकती थी। इसी उपपत्तिको ध्यानमें रखकर अनुवादमें अल्पायुका सम्बन्ध पुष्पदन्तसे जोड़ दिया गया है। 'अवगतः जिनपालितात् येन सः तेन भूतबलिना' ऐसा समास ध्यानमें रक्खा गया है।

११३ ५. जगदिट्ठं। यह पाठ प्रतियोंका है। टिप्पणीमें इसके स्थानपर 'जं दिट्ठं' पाठकी कल्पना सूचित की गयी है। वसुनन्दिश्रावकाचारकी गाथा ३ में 'इन्द्रभूइणा सेणियस्स जह दिट्ठं' ऐसा चरण दृष्टिगोचर हुआ। अतः अनुमान होता है कि यहां भी संभवतः शुद्ध पाठ 'जह दिट्ठं' रहा होगा जिसका संस्कृत रूप 'यथा दिष्टम्' होता है।

११७ १. 'अन्तर्बहिर्मुखयो' आदि। इसका अनुवाद निम्न प्रकार करना ठीक होगा---
समाधान—नहीं, क्योंकि, अन्तर्मुख चैतन्य अर्थात् स्वरूपसंवेदनको दर्शन और बहिर्मुख प्रकाशको ज्ञान माना है'। इत्यादि।

२२५ ८. उप्पायाणुच्छेद का अर्थ अनुवादमें इस प्रकार समझना चाहिये--
व्युच्छेद दो प्रकारका होता है—उत्पादानुच्छेद और अनुत्पादानुच्छेद। उनमें उत्पादानुच्छेदसे द्रव्यार्थिक नयका ग्रहण किया गया है जिसका अभिप्राय यह है कि जिस समयमें जिस प्रकृतिकी सत्वादि-व्युच्छित्ति होती हैं उसी समय उसका अभाव कहा जाता है। अनुत्पादानुच्छेद पर्यायार्थिकरूप है जिसका अभिप्राय यह है कि जिस समयमें जिस प्रकृतिकी सत्वादि-व्युच्छित्ति होती है उसके अगले समयमें उसका अभाव कहा जाता है।

३८५ ६. यहां प्रतियोंमें दर्शनकी परिभाषा न होनेसे वाक्य अधूरासा रह जाता है, अतएव उतने अंशकी पूर्ति पृ. ३८६ पंक्ति १ के अनुसार कर दी है, और उतने वाक्यांश को कोष्टकके भीतर रख दिया है। प्रस्तुत ग्रंथमें यही एक ऐसा स्थल सामने आया जहां हम अन्यत्रसे पाठकी पूर्ति किये विना निर्वाह न कर सके।

३९० १०. गाथा नं. २१० में 'भेज्जो' का अर्थ गोम्मटसारकी जीवप्रबोधिनी टीकामें 'परेणावबोध्याभिप्रायः। तथा टोडरमलजीके हिन्दी अनुवादमें 'जिसके अभिप्रायको और कोई न जाने' किया गया है। किन्तु 'भेज्ज' का अर्थ देशी नाममालाके अनुसार भीरु होता है। यथा 'भयालुए भेड-भज्ज-भेज्जलया'। (टीका) 'भेडो भेज्जो तथा भेज्जलओ त्रयोऽपि अमी भीरुवाचकाः' (दे. ना. मा. ६, १०७)। यह अर्थ प्रस्तुत प्रसंगमें दूसरोंकी अपेक्षा अधिक उपयुक्त प्रतीत हुआ। अतएव इसीके अनुसार अनुवादमें 'भीरु' अर्थ ही किया गया है।

भूमिका पृ. ६० पं. १ में गाथासे पूर्व 'तह आयारंगे वि उत्तं' इतना पाठ छूट गया है।